वार्षिकांक 10
वर्ष 2017–18

कृषि किरण

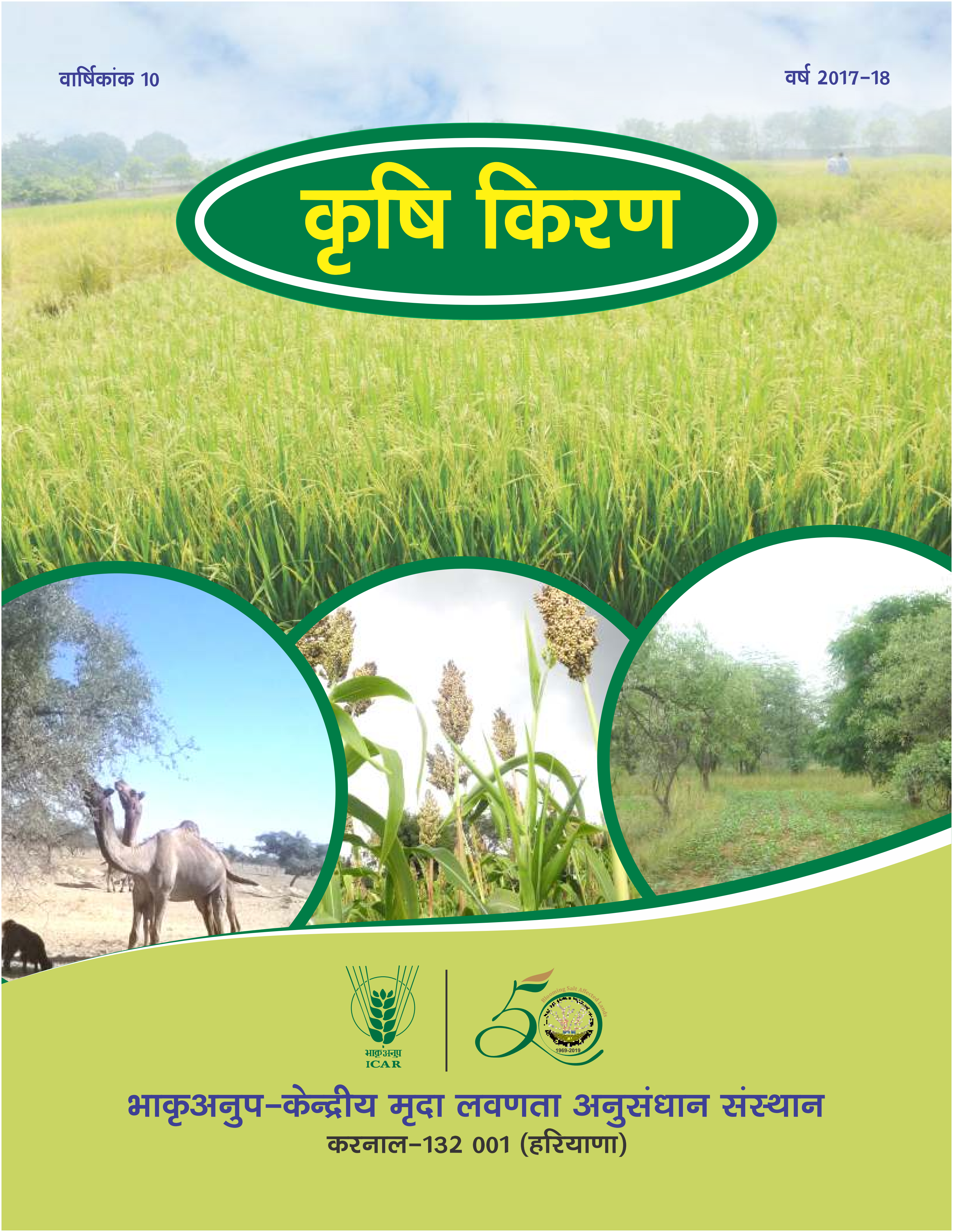

भाकृअनुप–केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान

करनाल–132 001 (हरियाणा)

सुस्वागतम
स्वर्ण जयंती किसान मेला
10 मार्च, 2018
माननीय श्री राधा मोहन सिंह जी
रबी
किसान मेला
मुख्य अतिथि :
माननीय श्री राधा मोहन सिंह जी
10 मार्च, 2018

वार्षिकांक 10

वर्ष 2017-18

कृषि किरण

भाकृअनुप–केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान
करनाल–132 001 (हरियाणा)

संपादक मंडल

संरक्षक एवं अध्यक्ष
प्रबोध चन्द्र शर्मा (निदेशक)

संपादक
राजेन्द्र कुमार यादव (प्रधान वैज्ञानिक)
रामेश्वर लाल मीणा (प्रधान वैज्ञानिक)
गजेन्द्र (वैज्ञानिक)
कैलाश प्रजापत (वैज्ञानिक)

सदस्य
मदन सिंह
सुनील कुमार त्यागी
अंशुमान सिंह

आवश्यक नोट
इस अंक में प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचारों/आंकड़ों आदि के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी है।

प्रकाशक :
निदेशक, भाकृअनुप–केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान करनाल–132 001
दूरभाषः 91–1842290501, ई–मेलः director.cssri@icar.gov.in, वेबसाईट : www.cssri.org

मुद्रक :
एरोन मीडिया
यू.जी. 17, सुपर मॉल, सैक्टर–12, करनाल, हरियाणा, भारत
मो. 0184–4043026, 98964–33225
ईमेल : aaronmedia1@gmail.com

प्राक्कथन

किसानों की कडी मेहनत, योजनाकारों की उचित नितियों तथा कृषि वैज्ञानिकों के अथक प्रयासों से भारत ने कृषि के क्षेत्र में प्रभावशाली प्रगति की है, तथा आज हम खाद्यान्न उत्पादन में आत्मनिर्भर ही नहीं अपितु निर्यात करने में सक्षम हैं। अग्रिम आंकलन के अनुसार 2017–18 में हमारा खाद्यान्न उत्पादन 284 मिलियन टन होने की संभावना है, जो कि आज तक के खाद्यान्न उत्पादन का एक रिकार्ड है। बढ़ती हुई जनसंख्या के लिए खाद्य आपूर्ति को सुनिश्चित करने के लिए भविष्य में और अधिक खाद्यान्न की आवश्यकता होगी। आंकलन के अनुसार वर्ष 2030 तक देश में 355 मिलियन टन खाद्यान्न उत्पादन की आवश्यकता होगी। वर्तमान में कृषि विकास कई चुनौतियॉ जैसे विवेकहीन कार्बन उत्सर्जन द्वारा त्वतरित जलवायु परिवर्तन, सीमित होते संसाधनों का कुप्रबन्धन, औद्योगिकीकरण, शहरीकरण, वैश्वीकरण एवं बदलती हुई उपभोक्ताओं की मांगों द्वारा प्रभावित हो रहा है।

इन परिस्थितियों में प्राकृतिक संसाधनों का कुशल उपयोग, उपलब्ध तकनीकियों मे आवश्यक बदलाव तथा नवीन तकनीकियों के विकास द्वारा कृषि उत्पादन को बढ़ा सकते हैं। देश में शुद्ध कृषि क्षेत्र को बढ़ाने की कोई सम्भावना नहीं हैं। इन परिस्थितियों में ऐसी जमीन जिनका वर्तमान मे कृषि उपयोग नहीं हो रहा हैं अथवा जिनसे बहुत कम उत्पादन होता हैं, के उचित प्रबंधन द्वारा उत्पादक बनाना होगा जिससे अतिरिक्त उत्पादन प्राप्त किया जा सके व ऐसे किसानों की आजीविका को बेहतर बनाया जा सके। इस प्रकार की 6.73 मिलियन हेक्टर भूमि लवण प्रभावित हैं और केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान ऐसी भूमियों एवं निम्न गुणवत्ता जल को सुधार कर उत्पादक बनाने में योगदान दे रहा हैं। संस्थान द्वारा विकसित तकनीकियो द्वारा लगभग 2.14 मिलियन हेक्टर लवणप्रभावित मृदाओं का सुधार किया जा चुका हैं।

विकसित तकनीकों तथा अन्य गतिविधियों से किसानों एवं प्रसार कार्यकर्ताओं को अवगत कराने हेतु केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, कृषि किरण पत्रिका का वार्षिक अंक 10 वर्ष 2017–18 प्रकाशित कर रहा है। इसमें संस्थान द्वारा विकसित तकनीकियों के साथ–साथ अन्य संस्थानो एवं कृषि विश्वविद्यालयों से प्राप्त उचित ज्ञानवर्धक लेखों का भी समावेश किया गया हैं। मैं सभी संस्थानों तथा उन संस्थाओं के वैज्ञानिकों एवं विशेषज्ञों का आभारी हूँ जिनके अनुसंधान कार्यों एवं अनुभवों को इस पत्रिका में प्रकाशित किया गया है।

मुझे पूर्ण विश्वास है कि यह पत्रिका विकसित तकनीकों एवं कृषि से संबंधित महत्वपूर्ण प्रौद्योगिकी को हिंदी माध्यम से किसानों एवं कृषि से जुड़े लोगों तक पहुँचा कर देश की प्रगति में महत्वपूर्ण योगदान करेगी। संपादक मण्डल के सभी सदस्यों को उनके इस सराहनीय प्रयास के लिए मैं हार्दिक बधाई देता हूँ और कृषि किरण के इस अंक की सफलता की कामना करता हूँ।

(प्रबोध चन्द्र शर्मा)
निदेशक
भाकृअनुप–केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, करनाल

संपादकीय

सन 1855 में सर्वप्रथम लवणीय मृदा के ऊपर हरियाणा के मूणक गाँव में कार्य हुआ, तत्पश्चात सन 1876 में उत्तर प्रदेश के अलीगढ़ जिले में नहरों द्वारा सिंचाई वाले क्षेत्रों में लवणों की उत्पत्ति के कारणों का पता लगाने, इनके वैज्ञानिक विश्लेषण एवं समाधान हेतु 'भारतीय रेह समिति' का गठन किया गया था। समिति ने अपने अध्ययन के आधार पर ऊसर मृदाओं की उत्पत्ति का खुलासा किया कि 'नहरों द्वारा सिंचाई एवं जल निकास की समुचित व्यवस्था का अभाव ही ऊसर मृदाओं की उत्पत्ति का मुख्य कारण है।' इम्पीरियल कृषि रसायनज्ञ जे. डब्लू. लीथर ने इन मृदाओं का विस्तृत रूप से अध्ययन किया तथा इस नतीजे पर पहुँचे कि नहरों द्वारा सिंचित एवं असिंचित दोनों क्षेत्रों में लवणीय मृदाओं के लक्षण समान हैं। इस प्रकार उन्होंने पूर्व से चली आ रही धारणा कि 'नहरों द्वारा सिंचाई करने से ही मिट्टी में लवणता उत्पन्न होती हैं' को गलत बतलाया। उन्होंने मैनपुरी जिले (यूपी) में किये गये अध्ययन से स्पष्ट किया कि नलकूप से सिंचाई करने से मृदा में लवणता अतिशीघ्रता से ही आती है क्योंकि नलकूप के जल में लवण की सान्द्रता अधिक होती है। साथ ही उन्होंने यह भी बताया कि नलकूप जल में गर्मियों में जाड़े की अपेक्षा इन लवणों की मात्रा अधिक होती है। सन 1963 में ऊसरीकरण की समस्या के निराकरण हेतु सरकार द्वारा एक समिति का गठन किया गया जिसके सुझावों के अनुसार इन मृदाओं के सुधार हेतु जल निकास विधि को अपनाया गया ।

वर्ष 1969 में स्थापित केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, करनाल (हरियाणा) देश के विभिन्न कृषि पारिस्थितिकी क्षेत्रों में लवणता प्रबंधन एवं कृषि में निम्न गुणवत्ता वाले जल के प्रयोग पर बहुविशयक अनुसंधान कार्यों के लिए समर्पित एक विश्व विख्यात संस्थान है। मुख्यालय में बहुविषयक अनुसंधान कार्यक्रम चार विभागों–मृदा एव फसल प्रबंध प्रभाग, सिंचाई एवं जलनिकास अभियांत्रिकी प्रभाग, फसल सुधार प्रभाग और प्रौद्योगिकी मूल्यांकन एवं प्रसार प्रभाग द्वारा संचालित किये जाते हैं। विभिन्न कृषि जलवायु क्षेत्रों की अनुसंधान आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए संस्थान के तीन क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र–कैनिंग टाउन (प. बंगाल), भरूच (गुजरात) और लखनऊ (उत्तर प्रदेश) क्रमशः समुद तटीय लवणता, लवणग्रस्त वर्टीसोल मृदाओं और सतही जल स्तर वाली मध्य एवं पूर्वी सिंधु–गंगा के मैदानों की क्षारीय मृदाओं संबंधी समस्याओं के समग्र वैज्ञानिक निदान हेतु कार्यरत हैं। संस्थान में 'लवणग्रस्त भूमियों के प्रबंधन और खारे पानी के कृषि में प्रयोग हेतु' अखिल भारतीय समन्वित परियोजना भी विभिन्न पारिस्थितिकी क्षेत्रों में स्थित केन्द्रों के सहयोग से इस दिशा में अनुसंधान कार्य में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है।संस्थान ने अथक प्रयास द्वारा पिछले पाँच दशकों में देश के विभिन्न भागों में स्थित लगभग 20 लाख हेक्टेयर लवण प्रभावित भूमियों को सुधार कर उन्हें खेती योग्य बनाने के लिये महत्वपूर्ण योगदान दिया है। इस सफलता में जिप्सम तकनीकी, धान गेहूँ तथा सरसों की लवण सहनशील प्रजातियाँ एवं भू–सतही जलनिकास, भूजलसंभरण इत्यादि तकनीकियों का विशेष महत्त्व रहा है।

केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान अपनी स्थापना के 50वें वर्ष में प्रवेश कर रहा है। स्वर्ण जयंति वर्ष के उपलक्ष्य में संस्थान भर विभिन्न कार्यक्रमों का आयोजन करेगा जिनका प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष उद्देश्य किसानों की आजीविका सुदृढ़ कर माननीय प्रधानमन्त्री जी के आह्वान पर किसानों की आय दोगुना करने से है। इस कड़ी में कृषि किरण का दसवा अंक प्रकाशित करते हुये हमें प्रसन्नता हो रही है। इस अंक में कृषि वैज्ञानिकों व संबंधित विषय विशेषज्ञों द्वारा सरल राष्ट्रभाषा में लिखे गए आलेख सम्मिलित किये गये हैं। इसके अतिरिक्त पत्रिका में संस्थान में आयोजित राजभाषा संबंधी कार्यक्रमों की विस्तृत जानकारी भी प्रस्तुत की गई है।

केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान तथा उन सभी संस्थाओं के कृषि वैज्ञानिक, विषय विशेषज्ञ और लेखक साधुवाद के पात्र हैं जिनके सहयोग से वैज्ञानिक एवं तकनीकी लेख और ज्ञानवर्धक साम्रगी इस अंक में प्रकाशित की गई है। हम संस्थान के निदेशक डा॰ प्रबोध चंद्र शर्मा के आभारी है जिनके कुशल मार्गदर्शन व प्रोत्साहन सें कृषि किरण के दसवे अंक का सफल प्रकाशन किया जा रहा है। हमें पूर्ण आशा हैं कि यह अंक किसानों, प्रसार कार्यकर्ताओं और हिन्दी से लगाव रखने वाले पाठकों के लिए लाभप्रद सिद्ध होगा।

संपादक मंडल

अनुक्रमणिका

क्र.सं. आलेख पृष्ठ संख्या

1. **गिरीपुष्प (ग्लेरिसीडीया) बारानी क्षेत्रों की मृदाओं के लिए वरदान वृक्ष** 01
के.एल. शर्मा*, ए.के. इन्दोरिया, के. सम्मी रेड्डी, एस.के. यादव एवं मुन्ना लाल

2. **बारानी क्षेत्रों की मृदाओं में जैविक कार्बन का महत्त्व एवं इसे बढ़ाने की तकनीकियां** 04
ए.के. इन्दोरिया, के.एल. शर्मा*, के. सम्मी रेड्डी, एस.के. यादव एवं जी. प्रभाकर

3. **धान की उत्पादकता बढ़ाने के लिए चावल सघनीकरण प्रणाली** 08
आर.एम. कुमार.*, आरती सिंह, सौम्य साहा, मंगल दीप टूटी एवं एम.एन. अरुण

4. **बकरी के दूध का औषधीय उपयोग** 16
आयूष यादव, ज्योतिमाला साहू, .रूचि सिंह,* किरनपाल सिंह सैनी,
एस.एस. परिहार एवं भावना अहिरवार

5. **दुधारू पशुओं में अपच तथा अन्य रोग एवं इनका निदान** 19
प्रगति पटेल, आदित्य मिश्रा, रूचि सिंह,* आनंद जैन एवं ज्योत्सना शक्करपुड़े

6. **एकीकृत कृषि-समुचित आय एवं पोषण की एक प्रणाली** 24
प्रगति पटेल, आदित्य मिश्रा, रूचि सिंह,* आनंद जैन एवं ज्योत्सना शक्करपुड़े

7. **कार्बन अधिग्रहण के लिए शुष्क क्षेत्र में कृषि वानिकी-एक विकल्प** 30
अर्चना वर्मा,* श्रवण कुमार, शिरन के., सुरेश एन.वी. एवं प्रवीण कुमार

8. **गुजरात में लवणीय काली मृदा हेतु उपयुक्त रबी मक्का की प्रजातियाँ** 33
इन्दीवर प्रसाद* एवं अनिल चिन्चमलातपुरे

9. **यथास्थान कम्पोस्ट : मृदा स्वास्थ्य के लिए वरदान** 38
आशा साहू,* सुदेशना भट्टाचार्य, एम.सी. मन्ना, ए.बी. सिंह, ए.के. त्रिपाठी एवं ए.के. पात्रा

10. **सौर जल पम्पिंग प्रणाली का सिंचाई में उपयोग** 39
प्रदीप नरले* एवं कृष्ण चन्द्र पाण्डेय

11. **सब्जियों की स्वस्थ पौध उत्पादन तकनीक** 43
प्रियरंजन कुमार,* संतोष कुमार बिश्नोई[1], जयपाल सिंह चौधरी, सुदर्शन मौर्य,
पी. भावना एवं रविशंकर पान

12. **बाजरा फसल के प्रमुख कीट, रोग एवं प्रबंधन** 49
करतार सिंह,* दया राम[1], मनोज चौधरी[2] एवं संतोष कुमार बिश्नोई[3]

13. **क्षारीय व जलभराव वाली मृदाओं में गन्ना उत्पादन** 52
ओम प्रकाश,* अजय कुमार साह, अश्विनी दत्त पाठक, ब्रह्म प्रकाश एवं पल्लवी यादव[1]

14. **गोभी वर्गीय सब्जियों के कीट तथा उनकी रोकथाम** 55
रूमी रावल* एवं कृष्णा रोलानियाँ

15. **लवण प्रभावित मृदाओं में जैतून की खेती की संभावनाएं** 57
मनीष कुमार, अंशुमान सिंह, राकेश बनियाल, राजकुमार,
राम किशोर फगोड़िया, शिवलाल एवं राजेंद्र कुमार यादव

16. **भारतीय डेरी उत्पादों की गुणवत्ता में कारगर त्रिस्तरीय यंत्रीकृत तकनीक** 63
अंकित दीप, प्रद्युम्न बर्नवाल,* चित्रनायक, खुशबू कुमारी, अशोक कुमार डोडेजा

17. **किनोवा : लवणीय-शुष्क पारिस्थितिकी एवं परिवर्तनशील जलवायु में सक्षम पोष्टिक फसल** 68
कैलाश प्रजापत, सतीश कुमार सनवाल एवं प्रबोध चन्द्र शर्मा
18. **लवणग्रस्त मृदाओं में गन्ने की सफल खेती** 72
पूजा[1], अश्वनी कुमार[2],बाबू लाल मीणा[2], विशाल गोयल[1], अनीता मान[2] एवं नीरज कुलश्रेष्ठ[1]
19. **जैव-उपचार(फाइटो-रेमेडिएशन) द्वारा लवणीय मृदाओं का प्रबंधन** 72
अश्वनी कुमार,* अनीता मान, बाबू लाल मीणा, पूजा[1], चारुलता, अरविन्द कुमार एवं सतीश कुमार सनवाल
20. **पश्चिम राजस्थान में बेर की वैज्ञानिक खेती से अधिक लाभ कमाना** 81
धीरज सिंह, मोती लाल मीणा, एम.के.चौधरी, चन्दन कुमार, एच. एस. जाट एवं गजेन्द्र यादव
21. **मरु क्षेत्र में बहुउपयोगी गून्दे की वैज्ञानिक खेती** 88
धीरज सिंह, मोती लाल मीणा, एम.के.चौधरी, चन्दन कुमार, गजेन्द्र यादव एवं एच. एस. जाट

22. **कविताएँ**

बड़ा ही महत्व है 95
मीना लूथरा
23. **कृषि-विशेष : खेती-किसानी की कहावतें विविध संकलन** 96
24. **संस्थान के कृषि अनुसंधान एवं अन्य क्रियाकलापों में राजभाषा हिन्दी** 103
रामेश्वर लाल मीणा,* अनिल कुमार एवं सुनील कुमार त्यागी

के॰एल॰ शर्मा*, ए॰के॰ इन्दोरिया, के॰ सम्मी रेड्डी, एस॰के॰ यादव एवं मुन्ना लाल
भाकृअनुप–केन्द्रीय बारानी कृषि अनुसंधान संस्थान, हैदराबाद–500059 (तेलंगाना)
*E-mail: kl.sharma@icar.gov.in

गिरीपुष्प (ग्लेरिसीडीया)
बारानी क्षेत्रों की मृदाओं के लिए वरदान वृक्ष

एक अनुमान के अनुसार भारत में बारानी क्षेत्रफल करीब 80 मिलियन हैक्टर है। ये बारानी क्षेत्र मुख्यतः शुष्क, अर्ध–शुष्क एवं उप आर्द्र जलवायु क्षेत्रों में पाए जाते हैं। ज्यादातर बारानी क्षेत्रों की मृदाएं अनेक प्रकार के मृदा गुणों के विकृतिकरण की समस्याओं से ग्रसित है। इनमें मुख्यतः कम जैविक कार्बन, कमजोर मृदा संरचना, मृदा सतह पर पपड़ी बनना, मृदा घनत्व की अधिकता, असंतुलित मृदा जल परिचालकता एवं ग्रहणता, मृदा सतह में जल प्रवेश में कमी और नैसर्गिक रूप से फसल पोषक तत्वों की कमी होना इत्यादि है। उपरोक्त विकृतिकरण की समस्याओं के कारण इन क्षेत्रों के किसानों की फसलों की उत्पादकता एवं आय में निरंतर गिरावट हो रही है।

बारानी क्षेत्रों में गोबर की खाद की उपलब्धता कम होने के कारण एवं फसल अवशेषों की चारा हेतु अत्यंत निर्भरता के अलावा खुले चरने वाले पशुओं के कारण फसल अवशेषों का जमीनी स्तर पर न के बराबर होने से मृदा के गुणों का तेजी से ह्रास हो रहा है। इसके अलावा अत्यधिक एवं असमय जुताई क्रियाएं, नैसर्गिक रूप से तत्वों की कमी तथा असंतुलित पोषक तत्व प्रबंधन इस समस्या को बढ़ा देते हैं। अर्थात ये मृदाएं न केवल प्यासी वरन उपयुक्त पैदावार हेतु पोषक तत्वों के लिए भूखी भी है। इन क्षेत्रों में पाए जाने वाले वृक्ष गिरीपुष्प (ग्लेरिसीडिया) का उचित प्रबंधन करने पर यह मृदा गुणवत्ता सुधार एवं फसल उत्पादन में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।

गिरीपुष्प वृक्ष मुख्यतः लकड़ी, ईंधन, दवाइयों, खेतों में बाड बनाने, चारकोल इत्यादि के लिए प्रमुखता से उपयोग किया जाता है। अनुसंधान दर्शाते हैं कि इस वृक्ष की पत्तियों को हरी खाद के रूप में प्रयोग किया जाए तो ये मृदा गुणों में विकृतिकरण की विभिन्न समस्याओं से निजात दिलवाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकता है। साथ ही यह वृक्ष तकरीबन सभी बारानी क्षेत्रों की मृदाओं एवं जलवायु परिस्थितियों में आसानी से उगाया जा सकता है। इस वृक्ष में सूखा सहन करने की क्षमता होती है तथा यह वृक्ष 600 मि.मी. से ज्यादा वार्षिक वर्षा वाले क्षेत्रों में भी आसानी से उगाया जा सकता है। इस वृक्ष की ऊँचाई लगभग 10–15 मीटर तक होती है तथा इसमें तीव्र बढ़वार होती है और झाड़ीनुमा आकार में फैलता है जिससे आसानी से इसकी पत्तियों को पेड़ से तोड़कर मृदा में मिलाने के लिए प्रयोग कर सकते हैं। इस वृक्ष को खेतों में रोपण का भी बहुत आसान तरीका है, जिसमें इस वृक्ष की परिपक्व (एक साल पुरानी) टहनियों को, 10–15 सेंमी. लंबाई में काटकर, बरसात के दिनों में मृदा में 20–30 सेंटीमीटर गहराई में दबाने पर ये टहनियां नए वृक्ष के रूप में विकसित हो जाती है। गिरीपुष्प वृक्ष लगाने के एक साल बाद इस वृक्ष की टहनियां और पत्तियां उपयोग में लाई जा सकती है। उपरोक्त विधि के अलावा इसका रोपण बीजों द्वारा भी किया जा सकता है। इसके लिए बीजों को नर्सरी या खेत में 2–5 सेंटीमीटर गहराई में डालना चाहिए। इन वृक्षों को अम्लीय एवं साधारण क्षारीय मृदाओं में आसानी से उगाया जा सकता है। यद्यपि जलमग्न मृदाओं में इस वृक्ष की ज्यादा बढ़वार नहीं देखी गई है।

यह फलीदार वृक्षों की श्रेणी में आता है तथा इसकी जड़ें वातावरण में विद्यमान नाइट्रोजन गैस का मृदा में स्थिरीकरण करती है, जिसके परिणामस्वरूप मृदा में नत्रजन की मात्रा में बढ़ोत्तरी होती है। ये तीव्रता के साथ बढ़ने वाला वृक्ष है अर्थात इसकी टहनियां काटने पर इसमें पुनः शीघ्रता से वृद्धि होती है, जिसके परिणामस्वरूप अधिक मात्रा में इसकी पत्तियां मृदा प्रयोग हेतु उपलब्ध हो जाती है। अनुसंधान दर्शाते हैं कि एक बार गिरीपुष्प वृक्ष लगाने पर कई सालों तक इसकी पत्तियां मृदा के लिए प्रयोग की जा सकती है।

इसकी पत्तियां किसान अपनी सुविधा और फसल मौसम के अनुसार जैसे जून (बरसाती फसल बोने से पहले), नवंबर (बरसात के बाद बोने वाली फसल), मार्च (गर्मी की फसल) में आसानी से उपयोग कर सकते हैं।

एक अनुसंधान के अनुसार एक टन गिरीपुष्प की पत्तियों से 21 किलोग्राम नत्रजन, 2.5 किलोग्राम फॉस्फोरस, 18 किलोग्राम पोटाश, 85 ग्राम जिंक, 164 ग्राम मैंगनीज, 356 ग्राम तांबा, 728 ग्राम लोहा इत्यादि मृदा में संचित होता है। इसके अलावा इसकी पत्तियों में कैल्शियम, मैगनीशियम, सल्फर, बोरान, मोलीब्डेनम आदि पोषक तत्व भी अधिक मात्रा में विद्यमान होते हैं अर्थात इसकी पत्तियों को मृदा में मिलाने से मृदा के नैसर्गिक पोषक तत्वों में बढ़ोत्तरी होती है। अनुसंधान दर्शाते हैं कि बारानी क्षेत्रों की विभिन्न फसलों जैसे ज्वार, मक्का, अरंड, मूंगबीन, सोयाबीन इत्यादि में 2 टन प्रति हैक्टर के हिसाब से पत्तियाँ मृदा में मिलाने से फसलोत्पादन में अपेक्षित सुधार होता है।

विभिन्न शोध कार्यों से ज्ञात हुआ है कि इन क्षेत्रों में उगाई जाने वाली फलीदार फसलें जैसे काला चना, मूंग, अरहर इत्यादि की नत्रजन की मांग केवल गिरीपुष्प की पत्तियों (2 टन प्रति हैक्टर) को मृदा में मिलाकर पूर्ण की जा सकती है अर्थात इन फसलों में रासायनिक नत्रजन खाद की मांग गिरीपुष्प की पत्तियों द्वारा पूरी की जा सकती है।

बारानी क्षेत्रों में गिरीपुष्प की पत्तियों का फसलों में उपयोग

भाकृअनुप–केंद्रीय बारानी कृषि शोध संस्थान, हैदराबाद द्वारा किए गए शोध दर्शाते हैं कि बारानी क्षेत्र की मृदाओं में गिरीपुष्प की पत्तियों को मृदा में मिलाने से जैविक कार्बन में 5–6 प्रतिशत बढ़ोत्तरी होती है तथा बढ़ा हुआ जैविक कार्बन मृदा संरचना को सुधारने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। परिणामस्वरूप मृदा सतह पर वर्षा के बाद बनने वाली पपड़ी में कमी आती है, साथ ही जैविक कार्बन मृदा छिद्रता में भी बढ़ोत्तरी करता है जिस से वर्षा जल मृदा में तीव्रता से प्रवेश करता है और मृदा जल संचालकता एवं मृदा जल ग्रहणता में वृद्धि होती है। उपरोक्त क्रियाओं की वजह से वर्षा जल कम समय के लिए मृदा सतह पर रूकता है जिससे जल बहाव एवं मृदा कटाव में अपेक्षित कमी आती है।

गिरीपुष्प की पत्तियों को मृदा सतह पर बिछाने से वर्षा की बूंदें मृदा से सीधे नहीं टकराती हैं जिससे मृदा कणों के बिखराव में कमी आने से मृदा सतह पर कठोर पपड़ी नहीं बनती है तथा फसलों का अंकुरण आसानी से होता है।

उपरोक्त मृदा गुणों में सुधार के अलावा गिरीपुष्प की पत्तियों को मृदाओं में मिलाने से मृदा जीवाणुओं के क्रियाकलापों में अप्रत्याशित बढ़ोत्तरी होती है और मृदा में विद्यमान फसल पोषक तत्वों की उपलब्धता में भी बढ़ोत्तरी होती है जो फसल उत्पादकता बढाने के लिए महत्वपूर्ण है। बारानी क्षेत्र की काली मृदाओं (इंदौर, मध्य प्रदेश) पर किए गए अनुसंधान दर्शाते हैं कि विभिन्न फसल प्रणालियों (मक्का, मक्का, सोयाबीन तथा सोयाबीन) में गिरीपुष्प की पत्तियों से मृदा गुणों (मृदा संरचना, मृदा जल संचालकता, मृदा जैविक कार्बन, मृदा नत्रजन, फॉस्फोरस, पोटाश, सल्फर, जिंक, मैंगनीज, लोहा, तांबा, बोरान एवं मृदा सूक्ष्मजीवाणुओं के क्रियाकलापों में अपेक्षित बढ़ोत्तरी होने से इन फसलों की उत्पादकता में अप्रत्याशित बढ़ोत्तरी देखी गई है।

बारानी क्षेत्रों में नैसर्गिक ढलान ज्यादा होने से जल बहाव एवं मृदा कटाव की समस्याओं को कम करने के लिए ढलानों के विपरीत पंक्तिबद्ध रेखाओं में गिरीपुष्प वृक्ष को लगाकर उपरोक्त समस्याओं को कम किया जा सकता है तथा मृदा जल संचयन को बढ़ाया जा सकता है। ज्यादातर बारानी क्षेत्रों में अत्यधिक मृदा तापमान (40° सेंटीग्रेड से ज्यादा) होने की वजह से भी फसलोत्पादन में गिरावट दर्ज की जाती है। बारानी कृषि अनुसंधान संस्थान, हैदाराबाद द्वारा किए गए अनुसंधान दर्शाते हैं कि मृदा सतह पर गिरीपुष्प की पत्तियों को बिछाने पर मृदा तापमान में 2–3° सेंटीग्रेड की कमी आती है जो फसल बढ़वार एवं उत्पादन में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है अर्थात मौजूदा परिस्थितियों में बारानी क्षेत्रों में अगर गिरीपुष्प की पत्तियों को तर्कसंगत तरीके से इस्तेमाल किया जाए तो मृदा गुणवत्ता एवं फसलोत्पादन को निश्चित रूप से बढ़ाया जा सकता है।

समाप्त

उत्तम खेती मध्यम बान।
अधम चाकरी भीख निदान॥

ए.के. इन्दोरिया, के.एल. शर्मा*, के. सम्मी रेड्डी, एस.के. यादव एवं जी. प्रभाकर
भाकृअनुप–केन्द्रीय बारानी कृषि अनुसंधान संस्थान, हैदराबाद–500 059 (तेलंगाना)
*E-mail: kl.sharma@icar.gov.in

बारानी क्षेत्रों की मृदाओं में जैविक कार्बन का महत्त्व एवं इसे बढ़ाने की तकनीकियां

वर्तमान में देश की कुल जनसंख्या एवं पशुधन संख्या का क्रमशः 40 व 75 प्रतिशत हिस्सा बारानी क्षेत्रों में निवास करता है। मोटे अनाजों, दलहन, तिलहन, कपास और धान का क्रमशः 95,91,80,65 एवं 53 प्रतिशत बिजाई क्षेत्र, बारानी क्षेत्रों के अंतर्गत आता है। लेकिन इसके विपरीत कुल खाद्यान्नों का केवल 44 प्रतिशत हिस्सा ही बारानी क्षेत्रों में पैदा होता है। जिसका मुख्य कारण मृदा स्वास्थ्य में आवश्यक तत्वों की कमी का होना है।

मृदा स्वास्थ्य को बनाए रखने में मृदा जैविक अंश अति महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। मृदा जैविक कार्बन को मृदा की जीवन रेखा माना जाता है। बारानी क्षेत्रों में काली मृदाओं को छोड़कर अन्य मृदाओं में 0.5 प्रतिशत से भी कम जैविक कार्बन पदार्थ पाया जाता है। एक अनुसंधान के अनुसार बारानी क्षेत्र की रेगिस्तानी मृदाओं (जैसे हिसार, जोधपुर) में तो यह केवल 0.15 से 0.2 प्रतिशत तक ही पाया जाता है। राजकोट, इंदौर, रीवा, आगरा, बीजापुर की काली मृदाओं में औसतन 0.39 प्रतिशत तथा फुलबनी, रांची, अनंतपुर, बंगलूरू की लाल मृदाओं में औसतन 0.32 प्रतिशत जैविक कार्बन की मात्रा पाई जाती है। मृदा के जैविक कार्बन पदार्थ वर्गीकरण के अनुसार, इन मृदाओं का स्तर निम्न श्रेणी में आता है। चूंकि, ये सर्वविदित है कि मृदा जैविक कार्बन अन्य पादप पोषक तत्वों की उपलब्धता एवं उपज से सीधा संबंध रखता है, इसलिए इन मृदाओं में मृदा जैविक कार्बन बढ़ाकर अपेक्षित उपज प्राप्त की जा सकती है।

मृदा में जैविक कार्बन का महत्त्व

मृदा में विद्यमान जैविक कार्बन मृदा स्वास्थ्य को बनाए रखने में अति महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। ये मृदा के भौतिक, रासायनिक एवं जैविक गुणों में निम्नलिखित सुधार करने में सहायक सिद्ध हुआ है :

- मृदा संरचना में सुधार
- मृदा छिद्रता में सुधार
- मृदा घनत्व में सुधार
- मृदा जल संग्रहण और संचालकता में बढ़ोत्तरी
- मृदा तापमान में स्थिरता
- मृदा में विभिन्न पोषक तत्वों (नत्रजन, फॉस्फोरस, पोटेशियम, सूक्ष्म पोषक तत्व इत्यादि) की उपलब्धता में सुधार
- मृदा की अम्लीयता एवं क्षारीयपन निवारण में सहायता
- मृदा में उपस्थित सूक्ष्मजीवों के लिए भोजन सामग्री के रूप में काम आता है।

बारानी क्षेत्र की मृदाओं में जैविक कार्बन की गिरावट के कारण :

- नैसर्गिक रूप से बारानी क्षेत्र की मृदाओं में कम जैविक कार्बन का होना।
- अत्यधिक तापमान की वजह से मृदा जैविक अंश का जल्दी अपघटन होना।
- कम वर्षा एवं सिंचाई सुविधा का अभाव।
- अत्यधिक एवं असमय जुताई करना।
- जुताई क्षेत्रों में पशुओं की चराई कराना।
- किसानों द्वारा खेतों में कम जैविक कार्बन पदार्थों (गोबर की खाद, फसल अवशेषों, मुर्गी की खाद इत्यादि) का प्रयोग करना।
- रासायनिक खादों का अधिक प्रयोग करना।
- ज्यादातर बारानी क्षेत्रों में एकल फसल प्रणाली की वजह से फसल जड़ों द्वारा कम मात्रा में जैविक कार्बन पदार्थ मृदा में संचित होना।
- इन क्षेत्रों में फसल उत्पादन कम होने से फसलों से पैदा होने वाले चारे का अनुपात भी कम होता है अर्थात ज्यादातर चारा पशुओं के लिए प्रयोग किया जाता है।
- फसल अवशेषों को जलाना।
- उपयुक्त फसल चक्र का अभाव।
- इन क्षेत्रों की मृदा सतह पर नैसर्गिक रूप से ढलान ज्यादा होने से तेज वर्षा के दौरान अधिक जल बहाव एवं मृदा कटाव से मृदा की ऊपरी सतह पर विद्यमान जैव अंश बहकर खेतों की निचली ढलानों पर एकत्रित हो जाता है।

बारानी क्षेत्र की मृदाओं में जैविक कार्बन बढ़ाने की तकनीकियां :

- फसलों की कुल पोषण आवश्यकता का आधा हिस्सा जैविक पदार्थों द्वारा पूरा करना।
- उचित समय पर कम से कम जुताई करना।
- मृदा सतह को फसल अवशेषों द्वारा ढक कर रखना।
- मृदा सतह ढलानों के विपरीत जुताई करना।
- मृदा के प्रकार (काली, लाल मृदाएं) के अनुसार संरक्षण कूंड बिजाई, कूंड एवं नाली बिजाई, कूड की सतहों पर बिजाई, बड़ी क्यारियों में बिजाई करना इत्यादि से भी मृदा जैविक कार्बन में बढ़ोत्तरी होती है।
- मृदाओं में समन्वित पोषक तत्व प्रबंधन द्वारा विभिन्न फसल प्रणालियों जैसे मूंगफली आधारित, बाजरा–ग्वार आधारित, रागी आधारित, मूंगफली–रागी आधारित, सोयाबीन आधारित इत्यादि को अपनाकर आसानी से जैविक कार्बन को बढाया जा सकता है।

- उपलब्ध फसल अवशेषों को खेतों में मिलाने से भी मृदा जैविक कार्बन में बढ़ोत्तरी होती है। इन क्षेत्रों की मृदाओं में खरपतवार अवशेषों जैसे लेंटाना केमेरा (हिमाचल की पहाड़ी अल्फीसोल बारानी मृदाओं) द्वारा भूमि सतह को ढकने से भी मृदा जैविक अंश में बढ़ोत्तरी होती है।

- उचित फसल चक्र अपनाने से भी मृदा जैविक अंश में बढ़ोत्तरी होती है। उदाहरण के तौर पर अनाज फसल प्रणाली के बाद दलहन फसल प्रणाली को अपनाना तथा लंबी गहरी जड़ वाली फसलों की बुवाई के बाद कम गहरी जड़ वाली फसलों की निराई करना।

- मृदा सतह को ढक कर रखने वाली (कवर फसल) फसलों की बुवाई करना। चूंकि बारानी क्षेत्रों में ज्यादातर एक ही फसल ली जाती है और ज्यादातर समय मृदा सतह ढकी हुई नहीं रहती है अतः मल्च फसलों को उगाकर मृदा सतह को ढक कर रखना चाहिए तथा संभव हो तो मल्च फसल को पुनः मृदा में मिला देना चाहिए जिसके परिणामस्वरूप मृदा जैव अंश में बढ़ोत्तरी होती है। मल्च फसल के रूप में कुलथी एक अच्छा विकल्प है। लगातार दस साल तक कुलथी की फसल (3.03 से 4.28 टन प्रति हैक्टर) के बायोमॉस मृदा में मिलाने से मृदा के जैविक अंश में अपेक्षित बढ़ोत्तरी (24 प्रतिशत) दर्ज की गई है।

- हरी खादों का प्रयोग करने से भी मृदा जैव अंश में बढ़ोत्तरी होती है अतः संभव हो तो हरी खादों के रूप में विभिन्न फसलें अपनाकर मृदा जैव अंश को बढ़ाया जा सकता है।

- जैविक खादों का प्रयोग करने से भी मृदा जैविक कार्बन में अपेक्षित बढ़ोत्तरी होती है।

- बारानी क्षेत्र की खुरदरी मृदाओं में तालाब की गाद मिलाने से भी मृदा जैविक कार्बन में अपेक्षित बढ़ोत्तरी होती है।

- मृदा में जैविक कार्बन बढ़ाने में कृषि वानिकी भी बारानी क्षेत्रों में महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकती है। अनुसंधान दर्शाते हैं कि ग्लेरिसिडीया की टहनियों की कतरनें मृदा में डालने से मृदा जैविक कार्बन में

बारानी क्षेत्रों के किसानों द्वारा गोबर की खाद को खुले में डालने से इसमें विद्यमान पोषक तत्व वर्षा जल के साथ बहकर चले जाते हैं साथ ही वातावरण के लिए भी नुकसानदायक साबित होता है। अतः गोबर की खाद को खुले में डालने के बजाय मेड पद्धत्ति से तैयार करना चाहिए।

बारानी क्षेत्रों में विभिन्न प्रकार के फसल अवशेषों को कंपोस्ट के रूप में प्रयोग करके मृदा में जैविक कार्बन को बढ़ाया जा सकता है।

अपेक्षित बढ़ोत्तरी देखी गई है। इसी प्रकार अधातोड़ा वासिका (बभूती झाड़ी) की टहनियां पंजाब के बारानी क्षेत्रों की मृदा में मिलाने से भी जैव अंश में वृद्धि होती है। विभिन्न प्रकार के पेड़ जैसे नीम, पोंगेमिया, इत्यादि की पत्तियों को मृदा सतह पर फैलाने से (ढकने से) मृदा तापमान में गिरावट आती है साथ ही उन पत्तियों के गलने के बाद मृदा में जैव अंश की बढ़ोत्तरी होती है। इन पेड़ों को खेतों की मेड़ो पर आसानी से उगाया जा सकता है।

इस प्रकार उपरोक्त तकनीकियों को अपनाकर मृदा में जैव पदार्थ को बढ़ाया जा सकता है और मृदा स्वास्थ्य में सुधार लाकर भूमि के उपजाऊपन को काफी हद तक सुधारा जा सकता है।

समाप्त

⌘ भूमि न भुमियां छोडिये, बड़ौ भूमि कौ वास।
भूमि बिहीनी बेल जो, पल में होत बिनास॥ ⌘

आर.एम. कुमार.*, आरती सिंह, सौम्य साहा, मंगल दीप टूटी एवं एम.एन. अरुण
भाकृअनुप–भारतीय चावल अनुसंधान संस्थान, हैदराबाद–500 030 (तेलंगाना)
*E-mail: kumarrm21364@gmail.com

धान की उत्पादकता बढ़ाने के लिए चावल सघनीकरण प्रणाली

एशिया में लाखों लोगों का जीवन चावल है जहाँ 90 प्रतिशत से अधिक चावल उगाया और खाया जाता है। चावल विश्व के 193 देशों में से 114 देशों में उगाया जाता है। भारत में चावल लगभग 440 लाख हैक्टर क्षेत्र में उगाया जाता है। बढ़ती जनसंख्या के लिए आवश्यक अनाज की बढ़ती मांग को पूरा करने के लिए घटते जमीन और पानी जैसे संसाधनों से बढ़ी हुई उत्पादकता को प्राप्त करना एक जटिल कार्य है। घरेलू तथा औद्योगिक क्षेत्रों में बढ़ती मांग के कारण कृषि के लिए जल उपलब्धता कम हो रही है। एक किलो चावल उत्पादन के लिए लगभग 3000 लीटर जल का उपयोग होता है। जल संसाधन मंत्रालय, भारत सरकार ने अनुमान लगाया है कि वर्ष 2025 तक, पानी की कुल मांग 1093 अरब घन मीटर (बीसीएम) होगी, जिसमें से अधिकांश (910 बीसीएम) सिंचाई के लिए उपयोग किया जाएगा और देश को विभिन्न क्षेत्रों में पानी के लिए कड़ी प्रतिस्पर्धा का सामना करना पड़ेगा। अतः चावल की खेती में जल के बेहतर उपयोग के लिए उपयुक्त प्रौद्योगिकी विकसित करना अनिवार्य है जो कि जल और खाद्य सुरक्षा के लिए अत्यंत महत्त्वपूर्ण कुंजी है। छोटे और सीमांत किसानों के लिए चावल सघनीकरण प्रणाली (एस.आर.आई.) कम निवेश के कारण अति उपयोगी हो सकती है।

धान की परंपरागत खेती कद्दू किए जलमग्न खेत में की जाती है। धान के जलमग्न मृदा में जीवित रहने और जलमग्नता की अवस्था में प्रभावी खरपतवार प्रबंधन के कारण यह विधि लोकप्रिय है। परन्तु धान की खेती में जल उत्पादकता निम्नतम रहती है। धान की खेती में जल उत्पादकता बढ़ाने के लिए क्रांतिकारी परिवर्तन किए जा रहे हैं तथा प्रौद्योगिकियों को विकसित किया जा रहा है। एस.आर.आई. विधि में जुती हुई गीली भूमि में सीधी बुवाई, ऊँची जमीन पर एक बार क्यारी को विकसित करना, भूमि को गीला करना और सुखाना आदि चावल सघनीकरण प्रणाली की कुछ क्रिया हैं। चावल के लिए समान लाभ के साथ एस.आर.आई. पद्यतियों का उपयोग गेहूँ, गन्ना, बाजरा, आलू और सरसों जैसी फसलों में भी किया जा सकता है। जल बचत की पद्धतियों के उपयोग के कारण ही यह विधि सारे देश के किसानों में लोकप्रिय हो रही है। अतः एस.आर.आई. पद्यति के बुनियादी सिद्धांतों को समझने की आवश्यकता है और प्रत्याशित फायदों के लिए प्रभावी तौर–तरीकों को अपनाना आवश्यक है।

चावल सघनीकरण प्रणाली क्या है?

यह न तो किस्म है और ना ही संकर धान है परन्तु धान उगाने की एक पद्यति है। इस नई पद्यति का विकास सन् 1983 में मेडागास्कर में हुआ और अब दुनिया के अन्य देशों में इसका विस्तार हो रहा है। यह प्रणाली कुछ सिद्धांतों पर आधारित है जिसमें परंपरागत विधि से थोड़ा सा अंतर है जैसे पौधशाला की तैयारी, बीज बुवाई, सिंचाई और जल प्रबंधन, खाद एवं खरपतवार का प्रबंधन। एस.आर.आई. प्रणाली में पनीरी, मिट्टी, पानी और पोषक तत्वों के प्रबंधन को बदलकर धान की सिंचाई की उत्पादकता बढ़ाने के सिद्धांतों पर आधारित है।

युवा पौध (दो से तीन पत्तियाँ) तथा कोनो वीडर से खरपतवार प्रबंधन – एस.आर.आई. के महत्वपूर्ण घटक

एस.आर.आई. के मूल सिद्धांत

इस पद्धति में पौध, मिट्टी, जल और खाद के प्रबंधन के लिए विविध प्रकार की विधियाँ सूचित की गई हैं। हजारों सालों की परंपरागत विधि में धान के खेत में पानी भरकर रखते हैं लेकिन इस पद्यति में खेत को केवल नम रखना पड़ता है। एस. आर. आई. पद्धति द्वारा सफलतापूर्वक खेती करने के लिए मुख्य रूप से निम्न छः सिद्धांतों को अपनाना आवश्यक है।

मूल सिद्धांत

- कम उम्र 8–12 दिन या दो से तीन पत्ती की पनीरी का रोपण।
- सावधानी से एक ही पौधे को कम गहराई पर रोपना।
- अधिक दूरी पर पौध रोपण (कम से कम 25 गुणा 25 सेंमी.)।
- पानी का प्रबंधन जिसमें खेतों में खड़े पानी की जगह खेतों को नम रखना।
- पंक्तियों के बीच में खरपतवार को कोनो वीडर की मदद से मिट्टी में मिलाना।
- कार्बनिक खाद जैसे गोबर की खाद या कम्पोस्ट का उपयोग करना ।

फसल उत्पादन तकनीकियाँ

भूमि का चयन :

- अच्छी जल निकास वाली समतल भूमि का चयन करना चाहिए।
- अम्लीय व क्षारीय, जलप्लावित निचली भूमि में एस.आर.आई. पद्धति से खेती नहीं करनी चाहिए ।
- भूमि में उपलब्ध पोषक तत्वों की दशा का पता करने के लिए भूमि का परीक्षण करवाना चाहिए ।

उचित किस्म का चयन

- साधारण तौर पर विभिन्न क्षेत्रों में उगने वाली अधिक उपज वाली किस्मों को एस. आर. आई पद्धति द्वारा उगाया जा सकता है। लेकिन एस.आर.आई में ज्यादा कल्ले देने वाली किस्में अधिक उपयुक्त होती है।

- अच्छी फसल के लिए स्थानीय और लोकप्रिय किस्म को उगाना चाहिए।
- एस.आर.आई पद्धति में संकर धान का बेहतर प्रदर्शन पाया गया है और इसीलिए इसकी सिफारिश भी की गई है।

बीज दर

एक एकड़ धान के क्षेत्रफल के लिए 2 कि.ग्रा. अच्छे, साफ–सुथरे, स्वस्थ और समुचित वजन के बीजों का उपयोग करना चाहिए। बुवाई करने से पहले निम्न पद्धति अपनाएँ:

शीघ्र परिपक्वता और बेहतर जड़ तंत्र वाली किस्म

- पौधशाला के लिए चयन किए गए बीजों को नमक के मिश्रण में मिलाना चाहिए।
- बीज डुबोने के लिए 1.65 कि.ग्रा. नमक को 10 लीटर पानी में मिलाकर नमक का मिश्रण (1.08 विशिष्ट भार) तैयार करना चाहिए।
- नमक के मिश्रण में बीजों को अच्छी तरह मिलाकर ऊपर तैरने वाले बीजों को निकाल देना चाहिए।
- ताजे अण्डों को नमक के मिश्रण में डालने पर अगर अंडा तैर रहा हो तो नमक के मिश्रण की सांद्रता बीज डुबोने के लिए ठीक है। यदि अंडा नीचे बैठ गया तो मिश्रण की सांद्रता बढ़ानी चाहिए।
- इसी नमक मिश्रण का दोबारा इस्तेमाल किया जा सकता है।

बीज भिगोना

अच्छे, साफ सुथरे बीजों को 12 घंटे तक पानी में भिगोने के बाद, पानी मिलाकर, भीगी हुई बोरी में डालकर 24 घंटे तक किसी गड्ढे में अच्छे अंकुरण के लिए दबा देना चाहिए।

पौधशाला की तैयारी

- 40 वर्ग मीटर में पौधशाला की क्यारी तैयार करनी चाहिए और इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि क्यारी खेत के ऐसे कोने में हो जहाँ पौधरोपण करना है।
- अगर धान का क्षेत्रफल एक एकड़ से ज्यादा है तब 1–2 दिन के अन्तराल पर पौधशालाओं की बुवाई करनी चाहिए। इस से ज्यादा क्षेत्र में चावल सघनीकरण प्रणाली द्वारा रोपाई करने में सुविधा होगी।
- एक एकड़ के लिए एक मीटर चौड़ाई तथा बीस मीटर लम्बाई में पौधशाला के लिए दो क्यारियों को तैयार करना चाहिए या एक मीटर चौड़ाई तथा 10 मीटर लम्बाई की 4 क्यारिओं की तैयारी करनी चाहिए ।

क्यारियों की तैयारी

क्यारियों की ऊँचाई आधार तल से 6–10 सेंमी. होनी चाहिए क्योंकि 8–12 दिन आयु के पौधों की जड़ 5 सेंमी. होती है।

ऊँची पौधशाला की तैयारी

गोबर खाद या वर्मी कम्पोस्ट और मिट्टी को एकांतर 4 परतों में निम्न पद्धति से डालना चाहिए :

प्रथम परत : 1–2 सेंमी. अच्छी सड़ी गोबर की खाद या वर्मीकम्पोस्ट।

दूसरी परत : 2 सेंमी. बारीक मिट्टी।

तृतीय परत : 2 सेंमी. अच्छी सड़ी गोबर की खाद या वर्मीकम्पोस्ट।

चौथी परत : 1–2 सेंमी. बारीक मिट्टी और सभी परतों को अच्छी तरह मिलाना चाहिए।

अच्छी तरह मिलाई गई मिट्टी या गोबर की खाद को 1:1 अनुपात में ऊँची क्यारी पर डालना चाहिए।

- पौधशाला की क्यारियों के चारों तरफ बांस की खपचियां लगाकर मिट्टी को गिरने से रोकना चाहिए।
- क्यारियों के चारों तरफ नाली बनानी चाहिए ताकि पानी आसानी से निकाला जा सके।
- अंकुरित बीजों का छिड़काव करना चाहिए।
- पौधशाला की क्यारियों में 2 कि.ग्रा. अंकुरित बीज का छिड़काव करने से पहले चार भागों में बाँट लेना चाहिए और एक–एक भाग में छिड़काव करना चाहिए। इस विधि से बीज की बुवाई एक समान होती है।
- बीज का छिड़काव करने में बहुत सावधानी रखनी चाहिए। बीज का छिड़काव शाम के समय करना आवश्यक है जिससे बीज सूखे नहीं।
- बीज की बुवाई के पश्चात् अच्छी सड़ी हुई गोबर की खाद की हल्की परत डालनी चाहिए। इसके ऊपर धान का पुआल क्यारी के ऊपर वाली परत में बिछाना चाहिए ताकि बीजों को सीधी धूप मिल सके और पक्षियों से सुरक्षित रखा जा सके।
- प्रति दिन सुबह–शाम कैन की सहायता से पौधशाला में पानी का छिड़काव करना आवश्यक है।

मुख्य खेत की तैयारी

- इस पद्धति में परंपरागत विधि के समान ही मुख्य खेत की तैयारी की जाती है, लेकिन खेत को समतल रखना आवश्यक है।
- पौधशाला की क्यारियों में बीज की बुवाई के तुरंत बाद मुख्य खेत की तैयारी शुरू करनी चाहिए।
- खेत की तैयारी करने से पहले 4 टन गोबर की खाद या कम्पोस्ट को एक एकड़ में डाल कर मिट्टी में मिला देना चाहिए।
- पशुओं या ट्रैक्टर से खेत की जुताई दो बार करनी चाहिए और इस पद्धति में खेत को समतल रखना आवश्यक है, इसलिए खेत की तैयारी के बाद लकड़ी का पाटा चलाना जरूरी है।
- खेत तैयार करते समय, अच्छे जल प्रबंधन के लिए सिंचाई एवं जल निकास की व्यवस्था करनी चाहिए।

मुख्य खेत में निशान लगाना

- इस विधि में पौधों की दूरी तथा कतार से कतार की दूरी समान होती है और प्रति वर्ग मीटर में 16 पौधे ही लगाए जाते हैं।
- निशान की सहायता से रोपाई के लिए खेतों में 25x25 सेंमी. (10x10 इंच) की दूरी पर निशान लगा दिया जाता है ।
- निशान को खींचते समय खेतों में धीरे से एक जैसा चलना आवश्यक है।
- अगर निशान उपलब्ध नहीं हो तो रस्सी या जंजीर की सहायता से भी खेतों में निशान लगा सकते हैं।

पंक्ति में पौधरोपण हेतु विभिन्न प्रकार के मार्करों को विकसित किया गया है। इन मार्करों को तैयार किये गये खेत में लंबाई और चौड़ाई में डालना चाहिए।

पौध प्रतिरोपण

- पौध प्रतिरोपण के समय खेत में खड़े पानी की आवश्यकता नहीं होती है।
- खेत की तैयारी के 24 घंटों के बाद रोपण करना चाहिये।
- इस पद्धति में 8–12 दिनों की पौध का रोपण किया जाता है जब पौधे दो पत्ती की अवस्था में आ जाते हैं।
- इस विधि में पौधों को बीज के साथ रोपण करना आवश्यक है। इसलिए पौधशाला से पौधों को निकालते समय, लोहे की पट्टी को पौधों के निचले हिस्से में धंसाकर मिट्टी के साथ ऊपर उठाना चाहिए।
- खेत में डाले गए निशान की प्रत्येक चौकड़ी पर एक पौधे को कम गहराई पर रोपा जाना चाहिए।
- पौधों को पौधशाला से निकालने के बाद कम से कम समय (आधे घंटे के अंदर) खेत में रोप देना चाहिए।

सिंचाई जल प्रबंधन

- इस पद्धति में खेत में पानी भर कर रखने की आवश्यकता नहीं है लेकिन जमीन हमेशा नम रहनी चाहिए। इसके लिए जमीन पर हल्की सी दरार दिखाई देने पर ही सिंचाई करनी चाहिए ।
- वीडर चलाते समय 2–3 सेंमी. पानी की परत की आवश्यकता होती है ताकि खरपतवार अच्छी तरह से मिट्टी में मिलाये जा सकें।
- खेत के चारों ओर निकास नाली बनाना जरूरी है ताकि अतिरिक्त पानी को निकाला जा सके।
- बालियाँ निकलने से लेकर दाने बनने तक 2–3 सेंमी. पानी रखना चाहिए।
- कटाई के 10–15 दिन पूर्व सिंचाई बंद कर देनी चाहिए।

खाद प्रबंधन

- खेत तैयार करने के पहले 4–5 टन/गोबर की खाद या कम्पोस्ट प्रति एकड़ को डाल कर मिट्टी में अच्छी तरह मिलाना चाहिए।
- इस पद्धति में पूरा कार्बनिक खाद या जैविक खाद का उपयोग करना जरूरी है। अगर कार्बनिक खाद उपलब्ध नहीं हो तब 50 प्रतिशत अकार्बनिक खादों का उपयोग कर सकते हैं जिससे अधिक पैदावार मिल सकती है।
- अनुमोदित नत्रजन की आधी मात्रा, पूरा फॉस्फोरस एवं 75 प्रतिशत पोटाश को आखिरी जुताई के पहले खेत में डाल कर मिट्टी में मिला देना चाहिए।
- दूसरी मात्रा (25 प्रतिशत) को दूसरी बार वीडर चलाते समय (पौध प्रतिरोपण के 20 दिन बाद) और आखिरी मात्रा (25 प्रतिशत) नत्रजन एवं 25 प्रतिशत पोटाश को कल्ले निकलने के एक हफ्ते पहले डाल देना चाहिए।
- लीफ कलर चार्ट की सहायता से नत्रजन की जरूरत पता करके जब आवश्यकता हो तब खेत में डालने से नत्रजन उपयोग क्षमता बढ़ती है।

खरपतवार प्रबंधन

- इस पद्धति में खेतों में खड़ा पानी न होने और अधिक दूरी पर पौधरोपण के कारण खरपतवार काफी तेजी से बढ़ता है। इसलिए समय से खरपतवार का नियंत्रण बहुत ही आवश्यक है।
- खरपतवार नियंत्रण के लिए हाथ से चलाने वाले वीडरों का उपयोग करने से मिट्टी पोली हो जाती है और उसमें हवा का आवागमन ज्यादा होता है।
- रोपण के 10 दिन बाद खेत में कोनो वीडर चलाना शुरू करना जरूरी है। कोनो वीडर को 10 दिन के अंतराल पर 4 बार खेत में चलाना चाहिए।
- पौधे के आस–पास के खरपतवार जो वीडर से कतार में छूट जाते हैं, उन्हें हाथ से निकाल देना चाहिए ।
- कोनो वीडर चलाने के एक दिन पहले सिंचाई करने से वीडर चलाना आसान हो जाता है।

कीट व रोग प्रबंधन

- खेत का विविध दशाओं में अवलोकन करते रहना चाहिए।
- एस.आर.आई. प्रणाली में रोग व कीटों का प्रकोप प्रायः कम होता है। अगर जरूरत पड़े तो कीट प्रबंधन के लिए प्राकृतिक तरीकों व जैविक कीटनाशकों का इस्तेमाल किया जाना चाहिए ताकि कीटों को हमेशा आर्थिक रूप से हानिकारक सीमा के स्तर के नीचे रखा जा सके।
- हमेशा एकीकृत कीट प्रबंधन को अपनाना चाहिए। कीट रोग प्रतिरोधी किस्मों का उपयोग करना चाहिए, प्राकृतिक जैव नियंत्रण और आवश्यकतानुसार कीटनाशकों का विभिन्न दशाओं में उपयोग करना चाहिए।

कटाई एवं फसलोपरांत प्रबंधन

- जब बालियों के निचले भाग के दाने दुग्ध अवस्था (50 प्रतिशत फूलने के 20 दिन बाद) में आ जाएँ तब खेत से पानी निकाल देना चाहिए।

- दानों के भरने तक और फूल निकलने के 30–35 दिनों के बाद जब पौधे का तना हरा रहता है तब कटाई करनी चाहिए, ताकि दाने झड़ें नहीं।
- दानों की नमी 20–24 प्रतिशत होनी चाहिए।
- कटाई के एक दिन बाद बीजों को निकलवा के सुखाना चाहिए ताकि बीजों में नमी 14 प्रतिशत तक हो जाए। इसी नमी में बीजों का भंडारण करना चाहिए। अखिल भारतीय समन्वित चावल सुधार परियोजना के अंतर्गत देश के विभिन्न क्षेत्रों में पिछले 4 मौसमों में किए गए परीक्षणों से ज्ञात हुआ है कि इस पद्धति से साधारण पद्धति की तुलना में धान की पैदावार 7–20 प्रतिशत अधिक प्राप्त की जा सकती है।

लाभः लागत विश्लेषण

एस.आर.आई. पद्धति में लाभ लागत अनुपात पारंपरिक पद्धति की तुलना में अपेक्षाकृत ज्यादा है। यह कम बीज और कम रसायन के उपयोग से होता है।

भारत में एस.आर.आई. पद्धति से चावल उगाने वाले चार प्रमुख राज्य छत्तीसगढ़, उत्तराखंड, मध्य प्रदेश और त्रिपुरा में चावल की खेती के अर्थशास्त्र की तुलना करने के लिए एक अध्ययन किया गया। परिणामों से ज्ञात हुआ कि पारंपरिक पद्धति में अनाज की पैदावार 1724 कि.ग्रा./एकड थी, जबकि एस.आर.आई विधि में 2466 कि.ग्रा./एकड़ थी। हालांकि, एस.आर.आई खेती में कुल लागत अपेक्षाकृत ज्यादा थी, लेकिन परंपरागत विधि की तुलना में शुद्ध आय अधिक थी और इसलिए एस.आर.आई पद्धति के लिए लाभ लागत अनुपात भी अधिक था, अर्थात् 2.21:1 जबकि पारंपरिक पद्धति में शुद्ध आय 1.94:1 थी।

तालिका 1: एस.आर.आई बनाम परंपरागत खेती का तुलनात्मक विवरण (5 राज्यों का औसत)

विवरण	एस.आर.आई. तकनीक	परंपरागत तकनीक
अनाज उपज (कि.ग्रा./एकड़)	2466	1724
भूसा उपज (कि.ग्रा./एकड़)	3320	2960
अनाज का मूल्य (रुपए/एकड़)	19899	13600
भूसे का मूल्य (रुपए/एकड़)	2130	1964
खेती की कुल लागत (रुपए/ एकड़)	996223	8004.46
सकल आय (रुपए/एकड़)	22021	15564
शुद्ध आय (रुपए/एकड़)	12066.77	7559.53
लाभ लगत अनुपात	2.21:1	1.94:1

एस.आर.आई. प्रणाली का मूल्यांकन

एस.आर.आई. प्रणाली के फायदे

- 30–40 प्रतिशत पानी की बचत होती है क्योंकि इस पद्धति में कम पानी का उपयोग होता है।
- 85 प्रतिशत बीज की बचत (एक एकड़ में 2 किलो बीज का उपयोग होता है, लेकिन परंपरागत पद्धति में 25–30 किलो बीज का उपयोग होता है। ये संकर धान के प्रजनन के लिए उपयुक्त है। इसलिए संकर धान को एस.आर.आई. पद्धति में उगाने से बहुत फायदा है।

- रासायनिक उर्वरक और रसायनों, कीटनाशकों की बचत होती है क्योंकि इस पद्धति में जैविक खाद और जैविक नियंत्रणों का उपयोग होता है।
- जैविक पदार्थों के उपयोग से अधिक स्वास्थ्यवर्धक और स्वादिष्ट चावल पैदा होता है।
- कम निवेश से अच्छी और ज्यादा पैदावार प्राप्त होती है।
- एस.आर.आई. के 6 सिद्धांतों में से यदि कुछ ही सिद्धांतों का प्रयोग करें तो भी पैदावार में अच्छी बढ़ोत्तरी होती है।
- तेजी से फसल की स्थापना के कारण फसल पकने के समय में 7–10 दिन की कमी हो जाती है।
- प्रजनक बीज उत्पादन के लिए संकर धान बहुत उपयुक्त है क्योंकि इसमें बीज की आवश्यकता कम होती है और एक ही पौधे का रोपण और बहुत दूर लगाने की वजह से विशुद्ध किस्में उत्पन्न होती है।
- बीज गुणवत्ता भी एस.आर. आई. पद्धति में बेहतर होती है।

एस.आर.आई. तकनीक अपनाने में बाधाएँ

- एस.आर.आई. के कुछ सिद्धांत जैसे आरंभ में पौधों की रोपाई और पौधशाला की तैयारी में ज्यादा श्रमिकों की आवश्यकता पड़ती है। जो कि श्रमिकों की अनुपलब्धता के कारण एक बहुत बड़ी बाधा है।
- एस.आर.आई. को सभी क्षेत्रों में नहीं अपनाया जा सकता है जैसे कमांड क्षेत्र जहाँ पानी की उपलब्धता अनिश्चित एवं निचली भूमियाँ जहाँ पानी का प्रबंध करना मुश्किल है, इस पद्धति को नहीं अपना सकते।
- खरपतवार का नियंत्रण बहुत बड़ी बाधा है। एस.आर.आई. अपनाने में मृदा, विशेष कोनो वीडर की उपलब्धता अभी भी एक समस्या है और यांत्रिक बहु पंक्ति वीडर को विकसित करना जरूरी है जिससे श्रमिकों की चाकरी कम हो सके (एक आदमी को एक दिशा में कोनो वीडर चलाकर खरपतवार निकालने के लिए 16 कि.मी. / एकड़ चलना पड़ता है)।
- गुणवत्तायुक्त जैविक खाद (गोबर की खाद, कम्पोस्ट) पर्याप्त मात्र में उपलब्ध नहीं है। इसलिए किसानों को इस सिद्धांत को अपनाने में मुश्किल हो रही है।
- एस.आर.आई आम तौर पर श्रमिक गहन प्रणाली मानी जाती है।

समाप्त

⌘ खेती उत्तम काज है, इहि सम और न होय।
खाबे को सबको मिलै, खेती कीजे सोय॥ ⌘

आयूष यादव, ज्योतिमाला साहू, .रूचि सिंह,* .किरनपाल सिंह सैनी, एस॰एस॰ परिहार एवं भावना अहिरवार
पशु उत्पादन एवं प्रबंधन विभाग, नानाजी देशमुख पशुचिकित्सा विज्ञान विश्वविद्यालय, जबलपुर–482001 (मध्य प्रदेश)
E-mail: drruchivet@gmail.com

बकरी के दूध का औषधीय उपयोग

बकरी गरीब आदमी की गाय के रूप में जानी जाती है। भारत में बकरियों की जनसंख्या 135.173 मिलियन है, और इससे कुल दूध उत्पादन का 3.0 प्रतिशत मिलता है। बकरी के दूध की तुलना आमतौर पर गाय के दूध के साथ की जाती है। उत्पादन में अंतर के अलावा गाय के दूध को पचाना कठिन होता है, क्योंकि इनमें वसा की गोलिकायें बड़ी होती हैं, एवं अधिक लैक्टोज होने के कारण शिशुओं में लैक्टोज असहिष्णुता बढ़ जाती है, जिनके लक्षण उल्टी, दस्त, कोलाइटिस, राइनाइटिस आदि होते हैं। गाय के दूध से होने वाली एलर्जी की घटनाओं में वृद्धि देखी गई है। गाय के दूध से खून में कोलेस्ट्रॉल का स्तर बढ़ जाता है, जिससे रक्तनली में कोलेस्ट्रोल जमा होने लगता है। इन समस्याओं के कारण लोग बकरी का दूध पसंद करने लगे हैं।

तालिकाः बकरी और गाय के दूध की रासायनिक संरचना का विवरण

विवरण	बकरी का दूध (प्रतिशत)	गाय का दूध (प्रतिशत)
कुल ठोस	12.97	12.01
प्रोटीन	3.56	3.29
वसा	4.14	3.34
लैक्टोज	4.45	4.66

बकरी के दूध के औषधीय लाभ

- दूध में वसा की गोलिकायें 1 से 10 माईक्रोन तक होती है लेकिन 5 माईक्रोन से कम की गोलिकाओं की संख्या गाय के दूध में 60 प्रतिशत है जबकि बकरी के दूध में 80 प्रतिशत है। छोटे आकार की गोलिकायें दूध में बेहतर फैलाव और वसा को सजातीय मिश्रण प्रदान करती हैं जिससे दूध का पाचन आसान हो जाता है।
- बकरी का दूध मध्यम श्रृंखला के ट्राइग्लिसराइड्स में समृद्ध होता है जो आंत में अखंडित अवशोषित होते हैं एवं तेजी से पाचन में अपना योगदान प्रदान करते हैं।
- इसके अलावा बकरी के दूध में एग्लूटीनिन नामक प्रोटीन भी अनुपस्थित होता है, जिससे क्रिमिंग दर धीमी हो जाती है इससे बेहतर पाचन हेतु अधिक समय प्राप्त होता है।
- बकरी के दूध में कैप्रोइक, कैप्रायलिक और कैप्रिक एसिड प्रमुख होते हैं जो रोगाणुरोधी के रूप में कार्य करते हैं।
- बकरी के दूध में वसा की गोलिकायें छोटे आकार होने के कारण इन्हें तोड़ने के लिए यांत्रिक तरीकों की आवश्यकता नहीं होती। इसके परस्पर गायों के दूध में मौजूद वसा की बड़ी गोलिकायें जब यांत्रिक तरीके से टूटती हैं तो यह एक एंजाइम "जैंथीन ऑक्सीडेज) छोड़ती है जो आंतों की दीवार से रक्त प्रवाह में प्रवेश करता है। जैंथीन ऑक्सीडेज के प्रभाव से बचने हेतु रक्तनली कोलेस्ट्रोल स्त्रावित करता है जिससे रक्त में कोलेस्ट्रोल बढ़ जाता है।

- गाय के दूध की तुलना में अमीनो अम्ल टॉरीन की मात्रा विरोधी में 20–40 गुना अधिक होती है जो परासरण नियंत्रण, एंटी ऑक्सीकरण विरोधी, शारीरिक विकास, दिमागी विकास, कैल्शियम ट्रांसपोर्ट में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है एवं साथ ही ह्दय की बीमारियों से निजात दिलाता है।

- बकरी के दूध में आमतौर पर 250 से 300 मिलीग्राम/लीटर ऑलिगोसेकराइड्स होते हैं जो गाय के दूध से 4–5 गुना ज्यादा होता है। इसमें प्रीबायोटिक, एंटी इन्फेक्शन, संक्रमण व सूजन विरोधी गुण हैं। यह आंत की ऊपरी सतह में बैक्टीरिया के आवरण को रोकता है एवं कोशिकाओं में इसके स्थानांतरण को कम करता है। साथ ही यह लाभकारी बैक्टीरिया जैसे लैक्टोबैसिलस और बाईफिडो बैक्टीरिया के चयनात्मक विकास को बढ़ावा देता है।

- बकरी के दूध में वृद्वि कारकों के उच्च स्तर मौजूद हैं, जैसे परिवर्तित वृद्धिकारक एल्फा बीटा और न्यूरोपैप्टाइड।

- बकरी का खीस (कोलोस्ट्रम) और दूध पॉलीमाइन में समृद्व होता हैं जो शिशुओं में पाचन, डीएनए प्रतिकृति और न्यूरोजेनेसिस में सहायक होता है।

- एंजियोटेंसिन परिवर्तित एंजाइम निरोधक पेप्टाइडस बकरी के दूध से बने मट्ठे और कैसिइन प्रोटीन से प्राप्त होता है जो एंजियोटेंसिन–। को एंजियोटेंसिन–।। में बदलने से रोकता है, जिससे रक्तनली में संकुचन और उच्च रक्तचाप की संभावना कम हो जाती है।

- कैसिइन प्रोटीन बकरी के दूध में कैसिनो मैक्रोपेप्टाइड बनाता है, जिसके हाइड्रोलिसिस होने पर एंटी–थ्रोम्बेटिक पेप्टाइड पैदा होता है जो घनास्त्रता से बचाता है।

- बकरी के दूध में विटामिन ए की मात्रा अधिक होती है, क्योंकि बकरियाँ दूध से सभी बीटा कैरोटीन को विटामिन ए में बदल देती है। यही कारण है कि बकरी का दूध सफेद होता है। इसमें 3 गुना अधिक विटामिन बी 3 और 25 प्रतिशत अधिक विटामिन बी 6 पाया जाता है। साथ ही पोटेशियम, मैग्नीशियम, कैल्शियम, फॉस्फोरस, सेलेनियम ज्यादा होता है और इस प्रकार बकरी का दूध अवशोषण विकारों को कम करता है।

- बकरी के दूध का पीएच क्षारीय (7.2–7.4) होता है जो पेट के छालों के उपचार में सहायक है।

- दूध का उपयोग उच्च पाचन शक्ति और अवशोषण दर के कारण एड्स के रोगियों, जिन्हे आंत में विकारों के लक्षण होते हैं, एवं पाचन प्रभावित होता है को पोषक तत्व प्रदान करने हेतु किया जाता है, खनिज सेलेनियम बकरी के दूध में प्रचुर मात्रा में है जिसकी कमी एड्स और अन्य संक्रामक बीमारियों के तेजी से बढ़ने से जुड़ी ड्डई है। सेलेनियम ऑक्सीडेटिव तनाव से बचाता है और विषाणु प्रतिकृति को रोकता है, साथ ही टी–लिम्फोसाइट के कार्य को बेहतर बनाता है।

- गाय के दूध में प्रमुख प्रोटीन एल्फा एस–। कैसिइन है, जबकि बकरी के दूध में यह बीटा कैसिइन है। गाय के दूध से जीवन के पहले तीन वर्षो में एलर्जी होती है। यह शरीर एल्फा एस–। कैसिइन और बीटा–लैक्टोग्लोबुलिन प्रोटीन के खिलाफ एंटीबॉडी पैदा करता है जो कि एलर्जी के रूप में कार्य करता है। बीटा–लैक्टोग्लोबुलिन के गुणों को आंशिक रूप से विस्तारित हीटिंग द्वारा समाप्त किया जा सकता है लेकिन कैसिइन प्रोटीन मजबूत विकृतिकरण प्रक्रिया के बाद भी बच जाते हैं। चूँकि अल्फा एस–। कैसिइन की मात्रा बकरी के दूध में अपेक्षाकृत कम है, इसलिए इसे गाय के दूध से होने वाली एलर्जी के लिए

वैकल्पिक स्त्रोत के रूप में चुना गया है। जिनके लक्षण हैं खुजली (एक्जिमा), उल्टी दस्त, राइनाइटिस, एनाफिलेक्सिस आदि है।

- दूध में मौजूद प्रोटीन ए 1–बीटा केसिइन टाइप–1 डायबिटीज के लिए जिम्मेदार है। प्रोटीन के पाचन के बाद बीटा कैसोमोर्फिन का निमार्ण होता है जो इंसुलिन का उत्पादन करने वाली कोशिकाओं को नष्ट करने के लिए जिम्मेदार होता है, जिसके परिणामस्वरूप टाइप–1 डायबिटीज होता है। बकरी के दूध में ए–1 बीटा कैसिइन का अभाव है इसलिए यह सुरक्षित माना जाता है।
- बकरी के दूध में लैक्टोज कम होता है और साथ ही यह पूरी तरह से अवशोषित हो जाता है। इस वजह से इसमें लैक्टोज असहिष्णुता के लक्षण नहीं पाए जाते हैं।
- बकरी के दूध में संयुग्मित लिनोलिक अम्ल की उच्च मात्रा होती है। यह ऑक्सीकरण और कैंसर विरोधी गुण प्रदर्शित करती है, इस प्रकार यह कैंसर को रोकने में सहायक होती है।
- बकरी के दूध में उच्च कैल्शियम का स्तर वसा के ऑक्सीकरण में मदद करता है और इस तरह मोटापे को रोकने में सहायक है।
- बकरी को टी.बी. का प्रतिरोधी माना जाता है क्योंकि इसके दूध में लेक्टोपेरोक्सीडेज एंजाइम होता है जो जीवाणुरोधी और फफूंद विरोधी गुण प्रदर्शित करता है।
- बकरी के दूध से बना मट्ठा जैविक (कार्बनिक) सोडियम में समृद्ध है। जैविक सोडियम हड्डियों में कैल्शियम को पकड़े रखता है और रूमेटाइड गठिया को रोकता है, जो कैल्शियम की कमी के कारण होना पाया गया है।
- डेंगू के बुखार से शरीर में द्रव असंतुलन, सेलेनियम और प्लेटलेट की कमी होती है। बकरी का दूध सेलेनियम और एल्किल ग्लिसरॉल का समृद्ध स्त्रोत है। सेलेनियम डेंगू वायरस की प्रतिकृति को रोकता है, और एल्किल ग्लिसरॉल एक प्लेटलेट सक्रिय कारक है जो प्लेटलेट की संख्या को बढ़ाता है। इस प्रकार बकरी का दूध डेंगू प्रभावित रोगियों के लिए सहायक उपाय के रूप में अनुशंसित किया गया है।
- बकरी के दूध का इस्तेमाल विभिन्न सौंदर्य प्रसाधनों जैसे साबुन, एंटी–एजिंग क्रीम, बालों के तेल और शैंपू इत्यादि के लिए किया जाता है। इसका कारण फैटी एसिड और ट्राइग्लिसराइड्स की उच्च मात्रा है जो पैन्थिनॉल जैसे मॉइस्चराइजिंग कारक प्रदान करता है और मानव त्वचा के समान अद्वितीय पीएच प्रदान करता है।

बकरी के दूध की सीमाएं

बकरी के दूध में फोलिक एसिड और विटामिन बी12 की कमी है, जिससे मेग्लोब्लास्टिक एनिमिया उत्पन्न होता है।

निष्कर्ष

बेहतर पाचन शक्ति और जैव सक्रिय घटकों की वजह से बकरी के दूध को चिकित्सकीय प्रयोजनों के लिए उपयुक्त माना गया है। अपने उच्च पोषक मूल्य और शारीरिक गुणों के कारण, विकासशील देशों में बकरी के दूध को बढ़ावा दिया जाना चाहिए जहाँ कुपोषण और रोग अधिक प्रचलित है और उच्च गरीबी के स्तरों के कारण स्वास्थ्य देखभाल की लागत सीमित है।

समाप्त

प्रगति पटेल, आदित्य मिश्रा, रूचि सिंह,* आनंद जैन एवं ज्योत्सना शक्करपुड़े
पशु चिकित्सा एवं पशुपालन महाविद्यालय, नानाजी देशमुख पशुचिकित्सा विज्ञान विश्वविद्यालय, जबलपुर–482001 (मध्य प्रदेश)
E-mail: drruchivet@gmail.com

दुधारू पशुओं में अपच तथा अन्य रोग एवं इनका निदान

भारत एक कृषि प्रधान देश होने के साथ ही पशुधन में भी प्रथम स्थान रखता है। पशुओं की देखभाल में पशुपालकों को अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। पशुपालकों को पशु स्वास्थ्य का प्रारंभिक ज्ञान होना अति आवश्यक है। जिससे उनमें होने वाले साधारण रोगों को पशुपालक समझ सकें और उनका उचित उपचार किया जा सके। डेयरी गाय पौष्टिक दुग्ध का उत्पादन कर मानव भोजन में महत्वपूर्ण योगदान देती है। पशुओं को होने वाले विभिन्न रोगों में प्रायः पाचन संबंधी रोग होते है। अपच दुधारू गायों में होने वाली एक ऐसी समस्या है, जो कि ग्रामीण एवं शहरी दोनों ही क्षेत्रों में दुग्ध उत्पादन को कम कर किसानों एवं देश को आर्थिक नुकसान की ओर अग्रसर करती है। गायों का प्रमुख पाचन अंग रूमेन है, जहाँ पौधों से उत्पन्न सामग्रियों का माइक्रोबियल गतिविधि के कारण संशोधन होता है। अधिक दुग्ध उत्पादन वाले पशुओं में अपच एक प्रमुख समस्या है। अपच की स्थिति में अधिक मात्रा में अपचित भोजन रूमेन में एकत्रित हो जाता है, जिसके कारण रूमेन की कार्य करने की क्षमता एवं वहाँ उपस्थित सूक्ष्म जीवाणु भी प्रभावित होते हैं। जब रूमेन सही तरीके से काम नहीं कर पाता तो जानवरों में इसके कारण अनेक समस्याएँ जैसे हाजमा खराब होना, आफरा आदि उत्पन्न करती है। फलतः उत्पादन क्षमता पर भी बुरा प्रभाव पड़ता है। अपच की समस्या सीधे डेयरी फार्म की आर्थिक स्थिति को प्रभावित करती है। अतः दुधारू गायों की सामान्य शारीरिक क्रिया एवं उत्पादन क्षमता में तालमेल बनाये रखने के लिए उनके भोजन एवं प्रबंधन पर उचित ध्यान देने की आवश्यकता होती है।

अपच के प्रमुख कारक :

1. प्रबंधन कारक–

- खाने का प्रकार–अधिक मात्रा में दाना देने से पशुओं में अपच की समस्या आती है।
- कम गुणवत्ता वाला चारा खिलाना/या अधिक मात्रा में दलहनी हरा चारा एवं नई पत्ती वाला हरा चारा खिलाना।
- खाद्यान्न के प्रकार में अचानक परिवर्तन।

2. वातावरणीय कारक–

- गरम तापमान–वातावरण का अधिक तापमान भी अपच का कारण होता है।
- नम हरा चारा–इस तरह का चारा मुख्यतः मानसून के समय मिलता है जो कि पशुओं को खिलाने से उनमें अपच की समस्या उत्पन्न करता है।

3. पशुकारक

- परिवर्तन काल (प्रसव अवस्था के पहले एवं बाद) के दौरान।
- अधिक उम्र के कारण।

- जेर के खाने के कारण।
- एक ही करवट लेटे रहने से, आँतों में रूकावट होने के कारण होता है।

दुधारू गायों में मुख्यतः तीन प्रकार का अपच होता हैः

1. **अम्लीय अपचः**– आमाशय की अम्लीयता एक महत्वपूर्ण पोषण संबंधी विकार है। यह मुख्यतः उत्पादकता बढ़ाने के लिये अत्याधिक किण्वन योग्य भोजन खिलाने के कारण होता है। स्टार्च खिलाने से अत्यधिक किण्वन होने के कारण आमाशय में बैक्टीरिया की संख्या बढ़ जाती है। ये बैक्टीरिया आमाशय में अधिक मात्रा में परिवर्तनशील वसीय अम्ल एवं दुग्ध अम्ल का उत्पादन करने लगते है, जिसके फलस्वरूप आमाशय अम्लरक्तता एवं अपच की समस्या उत्पन्न होती है।
2. **क्षारीय अपचः**– अत्यधिक मात्रा में प्रोटीन युक्त भोजन अथवा गैर प्रोटीन नाइट्रोजन युक्त पदार्थ खाने से आमाशय क्षारीयता अपच की समस्या दुधारू पशुओं में देखी जाती है। इस रोग में आमाशय में अमोनिया का अत्यधिक उत्पादन होने लगता है, जिसके कारण आहारनाल संबंधी जैसे अपच, यकृत, गुर्दा, परिसंचरण एवं तंत्रिका तंत्र में गड़बड़ी आने लगती है।
3. **वेगस अपचः**– मूल रूप से यह विकार वेंट्रल वेगस तंत्रिका को प्रभावित करने वाले घावों / चोट / सूजन अथवा दबाव के परिणामस्वरूप होता है। यह समस्या मुख्य रूप से मवेशियों में देखी जाती है, परंतु कभी–कभी भेड़ों में भी यह विकार देखा गया है।

अपच से जुड़ी समस्याएँ –

- आमाशय की अम्लीयता – आमाशय के पीएच का कम हो जाना।
- आमाशय की क्षारीयता – आमाशय के पीएच का बढ़ जाना।
- आफरा – गैस का पेट में रूक जाना।

अपच के लक्षण–

- पशुओं का जुगाली कम करना।
- पशुओं में भूख की कमी।
- दूध कम देना।
- निर्जलीकरण ।
- पशु सुस्त हो जाता है एवं सूखा तथा सख्त गोबर करता है।

उपचार

- पहचान होने पर सर्वप्रथम इसके कारण का निवारण करना चाहिए। यदि खराब चारा हो तो तुरंत बदल देना चाहिये या पेट में कृमि हो तो उपयुक्त कृमिनाशक दवा देनी चाहिए।
- पेट की मालिश आगे से पीछे की ओर एवं खूँटे पर बंधे पशु को नियमित व्यायाम कराना चाहिए।
- देशी उपचार–हल्दी, कुचला, अजवाइन, गोलमिर्च, कालीमिर्च, अदरक, मेथी, चिरायता, लोंग पीपर इत्यादि का उपयोग पशु के वजन के हिसाब से किया जा सकता हैं।

एलोपैथिक उपचार

- द्रव उपचार–अपच प्रभावित पशु को शरीर के वजन अनुसार पर्याप्त मात्रा में डी.एन.एस., आर.एल.एन. एस. देना चाहिए।
- मैग्नीशियम हाइड्रोक्साइड– 100 से 300 ग्राम 10 लीटर पानी के साथ देना चाहिए।
- मैग्नीशियम कार्बोनेट– 10 से 80 ग्राम।
- सोडियम बाईकार्बोनेट– 1 ग्रा./कि.ग्रा. भार के अनुसार।
- सिरका 5 प्रतिशत– 1 मि.ग्रा./कि.ग्रा. भार के अनुसार।
- एंटीबायोटिक जैसे पेनिसिलीन, टायलोसीन, सल्फोनामाइड, टेट्रासाइक्लिन का उपयोग किया जा सकता है।

इसके साथ ही एंटीहिस्टामिनिक (एविल, सिट्रीजिन) एवं बी.काम्पलेक्स इंजेक्शन दिया जा सकता है। इन सभी एलोपैथिक दवाइयों का उपयोग पशुचिकित्सक की सलाह अनुसार ही किया जाना चाहिये।

अपच की रोकथाम

- पशुओं को संपूर्ण मिश्रित भोजन खिलाना चाहिये। दाने एवं चारे (हे) को अलग–अलग नहीं खिलाना चाहिये।
- पशुओं को रोज निर्धारित समय पर ही भोजन कराना चाहिये।
- पशुओं को स्वच्छ पानी ही पिलाना चाहिये।
- चारे में परिवर्तन लगभग 21 दिनों में धीरे–धीरे करना चाहिये।
- भोजन के साथ कैल्शियम प्रोपिओनेट, सोडियम प्रोपिओनेट, प्रोपायलीन ग्लायकोल आदि को ऊर्जा के स्त्रोत के रूप में दिया जा सकता है।
- गर्मी के मौसम में छायादार, हवादार एवं ठंडे स्थान पर ही पशुओं को रखना चाहिए ताकि कम से कम गर्मी का दुष्प्रभाव पड़े।

पशुओं में अन्य गैर संक्रामक रोग, कारण एवं निदान

असंक्रामक रोग पशु के स्वास्थ्य एवं उत्पादन की दृष्टि से उतने ही महत्वपूर्ण है जितने संक्रामक रोग। यह रोग प्रारंम्भिक अवस्था में जीवाणु संक्रमण से प्रभावित नहीं होते लेकिन यदि इन रोगों का सामयिक उपचार नहीं होता है और इनकी देखभाल अच्छी नहीं की जाती है तो अधिंकाश पशु शारीरिक रूप से कमजोर होकर संक्रामक बीमारियों के लिए संवेदनशील हो जाते हैं। असंक्रामक रोगों में पाचन संबंधी रोग, विषाक्तता से उत्पन्न रोग, त्वचा के रोग, पोषक तत्वों की कमी से उत्पन्न रोग एवं आघातजन्य रोग समाहित हैं।

पाचन संबंधी असंक्रामक रोग :

भूख न लगना :

साधारणतया छोटी, बड़ी संक्रामक और असंक्रामक बीमारियों से पीड़ित होने पर पशु चारा खाना कम कर देता है। इसका मुख्य कारण पशु के आमाशय या आँत में विकार, पशु के मुख रोग व चारे एवं दाने व चारे की किस्म में अचानक बदलाव होता है। इसके इलाज के लिए सर्वप्रथम पशु की जाँच करवानी चाहिए। यदि यह समस्या पाचन के विकारों की हो तो पशु को पाचन ठीक होने की दवाएं देनी चाहिए जैसे विटामिन–बी समूह, यीस्ट पाउडर इत्यादि।

कब्ज होना :

इस रोग में पशु को भूख नहीं लगती या थोड़े समय के लिए बिल्कुल ही समाप्त हो जाती है। यह रोग पशु को मुख्यतः अत्यधिक मात्रा में दाने या स्टार्च मुक्त पदार्थ का सेवन करने से, अत्यधिक प्रोटीन युक्त खाना, कम पानी, या एंटीबायोटिक दवाईयों के उपयोग करने से होता है। ऐसी अवस्था में पशु सुस्त रहता है गोबर करने की अवधि बढ़ जाती है और बाद में दस्त भी हो जाते हैं और पशु के शरीर में पानी की कमी हो जाती है। इसके इलाज में पशु के आमाशय की पीएच की जाँच करवाना लाभकारी होता है, अम्लीय पीएच में मैग्नीशियम हाइड्रोक्साइड एवं मीठा सोड़ा देना चाहिए, जबकि क्षारीय पीएच में सिरका (5–10 प्रतिशत) पशु को पिलाना चाहिए। रोमंथिका को सक्रिय करने के लिए अदरक या अमोनियम क्लोराइड का चूर्ण रोगी पशु को खिलाना चाहिए, यदि गोबर काफी देर से रूका हो तो मैग्नीशियम सल्फेट को 1 लीटर पानी में घोलकर पशु को पिलाना चाहिए।

आफरा :

इस बीमारी में पेट में अत्यधिक गैस भर जाती है तथा पशु का पेट फूल जाता है और अत्यधिक गैस के जमाव से सांस न ले पाने के कारण पशु की मृत्यु हो जाती है। यह रोग अत्यधिक हरे चारे, आहार नलिका में अवरोध, औस मे भीगी बरसीम, और अधिक समय तक पानी मे भिगोया गया दाना खाने से भी हो जाता है, इस रोग में पशु के पेट का बांया हिस्सा गैस के प्रभाव से अत्यधिक फूल जाता है पशु दांत कटकटाता है सिर व गर्दन को आगे की तरफ खींचता है। इस रोग के दौरान पशु का खाना बंद कर देना चाहिए, पशु की स्थिति ऐसी रखनी चाहिए कि उसका अगला भाग पिछले भाग से उँचाई पर हो। अत्यधिक गैस जमाव की स्थिति में पशु के आमाशय में ट्रोकार चाकू द्वारा छिद्र करके गैस को पशु चिकित्सक की सहायता से निकलवाना चाहिए, झागयुक्त आफरे में 2–3 बोतल डाइमिथिकोन का घोल रोमंथिका में डालना चाहिए। तारपीन का तेल, अदरक का चूर्ण एवं हींग का मिश्रण भी लाभकारी होता है।

यकृत शोथ :

यकृत सभी जीवों के शरीर का अभिन्न अंग है तथा सभी मेटाबोलिक क्रियाओं को नियंत्रित एवं सम्पन्न करता है इस रोग में पशु दिन प्रति दिन कमजोर होता जाता है। चारा खाना बंद कर देता है तथा उसका उत्पादन भी बहुत कम हो जाता है। गैर संक्रामक कारणों में यह रोग मुख्यतः विषाक्तता, भारी धातुएँ, विषैले पौधे खाने से होता है। विटामिन–ई एवं बी–2 की कमी से भी यकृत शोथ हो सकता है। इस रोग का कोई खास इलाज नहीं है, इस रोग से ग्रसित पशु को अधिक से अधिक आराम देना चाहिए, उसके आहार में ग्लूकोज अधिक व वसा की मात्रा कम होनी चाहिए, आयुर्वेदिक लिवर टोनिक भी लाभकारी होते हैं।

आघातजन्य रोग :

मामूली चोट, खरोंच, हड्डी टूटना, जोड़ खिसकना एवं गंभीर जानलेवा भीतरी चोटें, इसके अंतर्गत आती है। ऊपरी चोटों को लाल दवा के घोल से अच्छी तरह साफ कर आयोडीन का लेप लगाना चाहिए, घाव को सूती कपड़े से ढ़क कर रखना चाहिए, भीतरी चोटों के लिए पशु चिकित्सक के पास ले जाना चाहिए।

पोषक तत्वों की कमी से होने वाले रोग : पशुओं को विभिन्न अवस्थाओं में विभिन्न पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है अतः पशु की गर्भ तथा दुग्ध उत्पादन स्तर के अनुसार उसे पोषण प्रदान करना चाहिए। भारत में हरे चारे की कमी के कारण पशुओं में बहुत से पोषक तत्वों की कमी हो जाती है। इसलिए पशुओं को उपचारित (जैसे यूरिया उपचारित) आहार भी देना चाहिए। प्रोटीन की कमी को दूर करने के लिए फलीदार हरा चारा खिलाया जाना चाहिए इसके लिए चारे का यूरिया उपचार भी कर सकते हैं, विटामिन एवं खनिजों के मिश्रण को आहार में समुचित मात्रा में मिलाना चाहिए। इसके अलावा दुध देने वाले रोमंथी पशुओं में कैल्शियम की कमी से दुग्ध ज्वर होता है जिसका उपचार पशु चिकित्सक की सहायता से करना चाहिए।

साथ ही पशुओं में वर्षा या जाड़े में प्रायः खुजली हो जाती है जिसमें पशु अपने शरीर को किसी कठोर दीवार से रगड़ता है, इससे चमड़ी खुरदुरी हो जाती है तथा अधिक रगड़ने से संक्रमण भी हो जाता है। इसके इलाज के लिए पशुपालकों को बबूल की छाल को पानी में उबालकर, पशु को इस उबले पानी से नहलाना चाहिए तथा घाव वाले स्थान पर करंज का तेल, प्याज तथा लहसुन का सत, कपूर, नींबू का सत, हल्दी का मिश्रण बनाकर 7–8 दिन तक लगाना चाहिए।

पशुओं द्वारा मिट्टी खाना :

भैंसों में मिट्टी खाना आम रोग है, इसके कारण पशु की दुध उप्पादन क्षमता, भार ढोने की क्षमता तथा पशु का बिक्री मूल्य घट जाता है। पशु में संतान उत्पन्न करने की क्षमता भी घट जाती है और कमजोरी की वजह से उसमें कई बीमारियाँ आसानी से आ जाती है। यह रोग मुख्यत पेट व दांतों में कीड़े होने से, पूर्ण पौष्टक आहार न मिलना, कैल्शियम, फॉस्फोरस की कमी इत्यादि के कारण भी होता है। इसके इलाज के लिए लिए पशु को पोष्टिक चारा व लवण मिश्रण खिलाना चाहिए तथा साफ पानी पिलाना चाहिए।

समाप्त

एक हर हत्या दो हर काज।
तीन हर खेती चार हर राज॥

प्रगति पटेल, आदित्य मिश्रा, रूचि सिंह,* आनंद जैन एवं ज्योत्सना शक्करपुड़े
नानाजी देशमुख पशुचिकित्सा विज्ञान विश्वविद्यालय, जबलपुर–482001 (मध्य प्रदेश)
E-mail: drruchivet@gmail.com

एकीकृत कृषि–समुचित आय एवं पोषण की एक प्रणाली

भारत में तेजी से आर्थिक विकास के बावजूद हाल के वर्षों में कृषि की विकास दर बहुत धीमी रही है। देश के आर्थिक सर्वेक्षण 2008 के मुताबिक, 1999–2007 के दौरान खाद्यान्न उत्पादन की विकास दर 1.2 प्रतिशत के निम्न स्तर तक पहुँच गई। जोकि जनसंख्या वृद्धि 1.9 प्रतिशत की तुलना में कम थी। यह अनुमान है कि 2030 तक हमारे देश की आबादी 1.38 अरब और 2050 तक 1.60 अरब पहुँच जाएगी। इस जनसंख्या की खाद्यान्न की बढ़ती हुई मांग की पूर्ति के लिये हमें संबंधित अवधि के दौरान क्रमशः 28.9 और 34.9 करोड़ टन अनाज का उत्पादन करना होगा। देश का वर्तमान परिदृश्य इंगित करता है कि वर्तमान खेती योग्य क्षेत्रफल का 20 प्रतिशत से अधिक क्षेत्र 2030 तक गैर कृषि उद्देश्यों के लिये परिवर्तित हो जायेगा।

बढ़ती आबादी एवं देश में प्रति व्यक्ति भूमि की उपलब्धता में कमी के कारण कृषि के लिये भूमि के क्षैतिज विस्तार हेतु व्यवहारिक रूप से कोई गुंजाइश नहीं है। केवल उर्ध्वाधर विस्तार ही, कृषि अवयवों को एकीकृत करके संभव है, जिसमें कम स्थान और समय की आवश्यकता होती है और साथ ही यह कृषक परिवारों को उचित लाभ सुनिश्चित करता है। इसलिये कृषि उत्पादकता को बढ़ाने, पर्यावरण में गिरावट को कम करने, कृषि संसाधनों के अच्छे प्रबंधन एवं गरीब किसानों की जिंदगी की गुणवत्ता में सुधार और स्थिरता बनाये रखने के लिये एकीकृत खेती प्रणाली अति महत्वपूर्ण है।

एकीकृत कृषि प्रणाली विभिन्न कृषि उद्यमों का एक मिश्रण है, जिसमें खेती करने वाला परिवार मौजूदा संसाधनों का आवंटन इस प्रकार करता है कि खेती की उत्पादकता और लाभप्रदता को बढ़ाया जा सके। ये खेती उद्यम फसल, पशुधन, जलीय कृषि, कृषि वानिकी, कृषि बागवानी और रेशम उत्पादन आदि घटकों का समग्र एकीकृत रूप है। एकीकृत कृषि का दृष्टिकोण न केवल संसाधनों के पुनःचक्रण के साथ उच्च उत्पादकता को प्राप्त करना है, अपितु पारिस्थितिकीय सुदृढ़ता की अवधारणा को स्थायी कृषि के लिये अग्रणी करने का एक विश्वसनीय तरीका है।

एकीकृत कृषि पद्धति के लक्ष्य:

एकीकृत कृषि पद्धति के चार प्राथमिक लक्ष्य है:

- सभी घटक उद्यमों की उपज का अधिकतम स्तर प्राप्त कर स्थिर आय प्रदान करना।
- कृषि प्रणाली की उत्पादकता का पुनरूथान और सुधार कर कृषि परिस्थितिकी संतुलन प्राप्त करना।
- कीड़ों, बीमारियों और खरपतवार से बचाव कर प्राकृतिक फसल प्रणाली का प्रबंधन करना।
- रसायनों (उर्वरक और कीटनाशक) का कम उपयोग कर समाज को रसायन मुक्त उत्पाद और पर्यावरण, प्रदान करना।

एकीकृत कृषि पद्धति के लाभ

- फसल और संबद्ध उद्यमों के बढ़ने से प्रति इकाई क्षेत्र की उत्पादकता में वृद्धि द्वारा प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि होती है।

- एक उद्यम के व्यर्थ पदार्थ अथवा अवशेष का पुनःचक्रण कर उसका उपयोग अन्य घटकों के लिए ऊर्जा के रूप में होने के कारण लागत में कमी होती है जो कि मुख्य रूप से लाभ को बढ़ाने में सार्थक है।
- भिन्न–भिन्न आर्थिक महत्व के विभिन्न उद्यमों के एकीकरण के कारण कृषि से उत्पादन में आर्थिक स्थिरता आती है।
- इस प्रणाली में अवशेषों के पुनःचक्रण से जो ऊर्जा उत्पन्न होती है, उसके पुनः उपयोग के कारण बाह्य ऊर्जा के उपयोग पर निर्भरता कम होती है। इस प्रकार यह प्राकृतिक और दुर्लभ संसाधनों का संरक्षण करने में मदद करती है।
- विभिन्न उत्पादन घटकों का एकीकरण करने से विभिन्न प्रकार के खाद्य पदार्थों का उत्पादन होता है जो कि कुपोषण की समस्या को हल करने का अवसर प्रदान करता है।
- इस प्रणाली में उत्पादन के लिए अपशिष्टों के पुनःचक्रण के कारण निरंतर प्रदूषण से बचने में मदद मिलती है।
- इस कृषि प्रणाली से वर्ष भर में किसानों को अंडे, दूध, खाद्य, मशरूम, शहद, रेशम कीड़े के कोकून इत्यादि से धन का लाभ होता रहता है जो कि वर्ष भर किसानों को आर्थिक रूप से सुदृढ़ बनाने में मदद करता है।
- डेयरी/मशरूम/रेशम उत्पादन/फलों की फसल/सब्जी/फूलों की खेती इत्यादि के कारण छोटे और सीमांत किसानों को सालाना नगदी की वजह से नई प्रौद्योगिकियों जैसे कि उर्वरक, कीटनाशक आदि को अपनाने, उनका उपयोग करने में मदद मिलती है।
- जैविक अवशेषों का पुनःचक्रण, रासायनिक उर्वरकों की आवश्यकता को कम कर देता है। इसके अलावा, बायोगैस उत्पादन, ईंधन के रूप में घरेलू ऊर्जा की आवश्यकता को पूरी करता है।
- इस प्रणाली में विभिन्न प्रकार की फसलों को एक साथ लगाने के कारण कुछ हद तक चारे की कमी, कुछ हद तक हल हो जाती है।
- इस प्रणाली के उपयोग से समाज के उपयोग हेतु ईंधन एवं लकड़ी प्राप्त होती है।
- इस कृषि प्रणाली में लकड़ी उत्पादन वाले के घटकों को शामिल करने से जंगलों पर दबाव कम होता है।
- विभिन्न घटकों के एकीकरण से वर्ष भर कृषि श्रमिकों को रोजगार के लिए पर्याप्त अवसर प्रदान होते हैं।
- एकीकृत खेती प्रणाली उद्यमी को अधिक जानकारी के लिए मजबूर करती है, फलस्वरूप साक्षरता स्तर में सुधार होता है।
- एकीकृत कृषि प्रणाली कृषि आधारित उद्योगों के विकास के लिए अवसर प्रदान करती है।

खाद्य, मशरूम, फल, अंडे, दूध, शहद, सब्जियाँ आदि उत्पादों एवं एकीकृत कृषि प्रणाली के समग्र लाभ के कारण, किसान के जीवन स्तर में सुधार होता है।

एकीकृत कृषि प्रणाली के अवयव

कृषि	मछली खेती	अजोला खेती
डेयरी	बतख पालन	रसोई बागवानी
मुर्गी पालन	कबूतर पालन	चारा उत्पादन
बकरी पालन	बागवानी	बीज उत्पादन
भेड़ पालन	वानिकी	पौधशाला (नर्सरी)
सुअर पालन	मशरूम की खेती	रेशम उत्पादन

एकीकृत कृषि प्रणाली के तत्व

व्यक्तिगत किसानों के संसाधनों, उनकी रूचि और अवसरों के आधार पर एकीकृत कृषि प्रणाली में निम्नलिखित तत्वों को शामिल किया जा सकता है –

- फार्म तालाब
- जैव कीटनाशक
- जैव उर्वरक
- पौधे के उत्पादों का कीटनाशक के रूप में उपयोग
- बायो गैस
- सौर ऊर्जा
- कम्पोस्ट बनाना (वर्मी, जापानी कम्पोस्ट इत्यादि)
- हरी खाद
- वर्षा जल संचयन

एकीकृत कृषि प्रणाली मिट्टी, पानी, पौधे, पशु और पर्यावरण का एक अंतर संबंधित समग्र मिश्रण है जो इस प्रणाली को अधिक व्यवहारिक और लाभदायक बनाने में सक्षम है। इससे अधिक गुणवत्ता के भोजन का उत्पादन होता है। खाद्य श्रृंखला को मजबूत करने के लिए पोषण संबंधी विकार जो खनिज पोषक तत्वों और विटामिन की कमी के कारण होते हैं, उन्हें समाप्त करना आवश्यक है। एक सीमित जमीन पर बागवानी और सब्जियों की खेती से अनाज फसलों की तुलना में 2–3 गुणा अधिक ऊर्जा का उत्पादन किया जा सकता है एवं इनके इस प्रणाली में शामिल होने के कारण पोषण सुरक्षा सुनिश्चित की जा सकती है। इसी प्रकार अनाज के उत्पादन के साथ मुर्गी पालन, मत्स्य पालन, रेशम की खेती, मशरूम की खेती इत्यादि करने से अधिक ऊर्जा वाले भोजन के साथ ही स्थान का संरक्षण भी किया जा सकता है। इन उद्यमों के एकीकरण से निश्चित रूप से पारिस्थितिकी तंत्र में यथार्थवादी तरीके से उत्पादन, खपत और अपघटन में मदद मिलती है। अतः एकीकृत कृषि प्रणाली सीमांत और छोटे किसान, जिनके पास कम खेती है, उनके लिए सफल एवं सुरक्षित उद्यम है। यह प्रगतिशील आर्थिक विकास, रोजगार के अवसर, परिवार पोषण संबंधी आवश्यकताओं एवं खेती के संसाधनों का उचित उपयोग प्रदान करती है।

एकीकृत कृषि प्रणाली के साथ कुक्कुट पालन

देशी कुक्कुट पालनः कृषि और इससे संबंद्धित उद्यमों का चयन पर्यावरण के आधार पर संयुक्त रूप से किया जाता हैं जिसे हम एकीकृत कृषि प्रणाली कहते हैं, कृषि हमारे देश का एक महत्वपूर्ण क्षेत्र है, जिसमें कुल भूमि क्षेत्र का 70 प्रतिशत हिस्सा वर्षा की स्थिति पर निर्भर करता है, एक या दो एकड़ भूमि वाले छोटे किसान सिर्फ कृषि पर निर्भर नहीं रह सकते। वर्तमान परिवेश में प्रकृति और बदलते समय के कारण सिर्फ कृषि करना एक लाभदायक व्यवसाय नहीं है। इस स्थिति को बदलने के लिए कृषि की एकीकृत प्रणाली स्थापित करना बहुत महत्वपूर्ण है, संबंद्ध उद्यमों के साथ कृषि को अपनाने से पूरे वर्ष स्वरोजगार व आय किसानों को प्राप्त होती है। इसलिए एकीकृत कृषि पद्धति के साथ देशी कुक्कुट पालन को अपनाना एक अच्छा निर्णय है, जिससे किसान अपनी दैनिक आवश्यकता पूरी करने के साथ–साथ स्थाई आय प्राप्त कर सकता है।

इसके अलावा देशी मुर्गी पालन, मत्स्य पालन के साथ एकीकृत कृषि को अपनाया जा सकता है, जिससे पानी व भूमि का पूर्णतः उपयोग होता है, तालाब के किनारे कुक्कुट पालन एक उर्वरक मशीन के रूप में कार्य करता है, और तालाब के पोषक तत्वों की मात्रा को बढ़ाता है।

उपयोगः

- संतुलित आहार
- उत्पादकता में सुधार
- उच्च जीवन स्तर
- रोजगार के अवसरों में वृद्धि
- फार्म के अवशेषों का पुनःचक्रण
- अधिक आय प्राप्त होना
- भूमि का उचित व पूर्ण उपयोग

देशी मुर्गियों को घर के पिछवाड़े पालने की पद्धति में कोई भी वैज्ञानिक तकनीकों का उपयोग नहीं होता है, अतः उनकी उत्पादन क्षमता भी कम होती है, लेकिन यदि देशी मुर्गी को गहन प्रणाली के साथ एकीकृत किया जाए, जिसमें संतुलित आहार, बीमारियों का टीकाकरण इत्यादि पर ध्यान दिया जाए तो देशी मुर्गी पालन को एक लाभदायक व्यवसाय बना सकते हैं।

देशी कुक्कुट पालन के प्रकारः

बैकयार्ड कुक्कुट पालनः– आमतौर पर छोटे किसानों द्वारा घर के पिछवाड़े में मुर्गियों को कम संख्या में पाला जाता है, जिन्हें सिर्फ रात्रि के समय शेल्टर दिया जाता है। आहार के रूप में उन्हें रसोई की बची हुई सब्जियाँ, अनाज, व ओंगन के कीड़े इत्यादि प्राप्त होते है। इस पद्धति में हर रोज मुर्गीयों का मल इकट्ठा करके उसे मछलियों के तालाब में डाल दिया जाता है, या फिर अपघटन के बाद उर्वरक के रूप में इस्तेमाल किया जाता है।

व्यवसायिक शेड में देशी कुक्कुट पालनः इस पद्धति में मुर्गियों का शेड मछली तालाब के उपर बनाया जाता हैं जिससे मुर्गियों का मल तालाब में गिरता रहता है, जो कि मछलियों के लिए आहार का काम करता है या फिर मुर्गीयों के शेड को तालाबों के तटीय हिस्से में भी रखकर इस प्रकार का पालन करते हैं।

जब हम देशी चिकन को व्यवसायिक तरीके से मछली पालन के साथ शेड में पालते हैं, तो किसानों को बेकयार्ड की तुलना में अधिक लाभ प्राप्त होता है, इस प्रकार समन्वित खेती से कुक्कुटों की अनावश्यक क्रिया कम होती है, जिससे शारीरिक ऊर्जा की हानि भी कम होती है, और आवश्यकता के आधार पर अच्छी गुणवत्ता के फीड की आपूर्ति की जा सकती है। यह पद्धति दो प्रकार की होती है:

पिंजरा प्रणाली: इस पद्धति में कुक्कुट शेड, मत्स्य पालन तालाब के ऊपर बनाया जाता है, जिससे मुर्गी अपशिष्ट स्वचालित रूप से मछलियों के तालाब में आहार के रूप में प्राप्त होता है।

डीप माइलिंग विधि: इस पद्धति में कुक्कुट शेड, मछली के तालाब के किनारे पर बनाए और रखे जाते है, जिनका फर्श पक्का होता है, इस फर्श पर चावल की भूसी, मूंगफली के खोल, नारियल/जूट इत्यादि को घासफूस के रूप में फैला दिया जाता है, इस घासफूस व कुक्कुट मल को प्रत्येक दो महीनों के अपघटन के बाद इकट्ठा किया जाता है, तत्पश्चात् इसे तालाब में मत्स्य आहार के रूप में उपयोग किया जाता है।

पोल्ट्री खाद में क्रमशः 25.5, 1.63, 1.54 और 0.83 प्रतिशत कार्बन, नाईट्रोजन, फास्फोरस और पोटेशियम उपस्थित होता है। कुक्कुट शेड की जगह साफ–सुथरी, पर्याप्त हवादार व प्रकाश युक्त होनी चाहिए। शेड को तालाब की ऊपरी परत से 1.2–1.5 मीटर ऊपर बनाना चाहिए, इस प्रकार के शेड में 1 से 2 वर्गफुट की जगह एक कुक्कुट के लिए आवश्यक होती है।

फिशरलिंग को तालाब में डालने से एक माह पहले, 8 सप्ताह की मुर्गियों को शेड में पालना प्रारंभ कर देना चाहिए। इस प्रकार लगभग 500–600 कुक्कुटों को एक हैक्टर में पाला जा सकता है।

मुर्गियों के मल में 10 प्रतिशत अधिक प्रोटीन व फॉस्फोरस तत्व पाए जाते हैं, जो आहार के रूप में मछलियों को प्रदान कर हम उच्च उत्पादन प्राप्त कर सकते हैं।

कुक्कुट पालने में निम्न बिन्दुओं पर ध्यान देना अति आवश्यक है:

- देशी कुक्कुट पालन की उचित विधियाँ
- कुक्कुटों का शेड
- कुक्कुटों की प्रजातियाँ
- कुक्कुटों का संग्रहण
- कुक्कुटों को दिया गया आहार
- कुक्कुटों में रोग प्रबंधन

गहन पालन प्रणाली में मुर्गियों को संतुलित आहार दिया जाना चाहिए जो इस प्रकार है:

- 8 सप्ताह की उम्र तक – 40 से 45 ग्राम/दिन
- 8 से 24 सप्ताह की उम्र तक – 50 से 70 ग्राम/दिन
- 24 सप्ताह की उम्र व इससे बड़े – 80 से 120 ग्राम/दिन

किसान अपने क्षेत्र में उपलब्ध कच्चे माल जैसे अनाज, केक, चोकर की किस्में, मछली के टुकड़ों, विटामिन व खनिज इत्यादि को मिलाकर एवं पीसकर कुक्कुट आहार तैयार कर सकते हैं, जो मुर्गियों में अण्डे उत्पादन की दर को बढ़ाता है। अंडे देने वाली मुर्गियों के आहार में कैल्शियम की खुराक पूर्ण करने के लिए हम शैल फीड का उपयोग कर सकते हैं। देशी मुर्गियाँ 24 सप्ताह के बाद अंडे देना प्रारंभ कर देती है, और यह प्रक्रिया 72 सप्ताह तक चलती है, इस प्रकार एक वर्ष में 80 से 120 अंडे प्राप्त हो सकते हैं। 18 महीनों के बाद पुरानी मुर्गियों को नई मुर्गियों से हटा देना चाहिए।

देशी मुर्गियों में रोग प्रबंधनः देशी मुर्गियाँ की रोग प्रतिरोधकता अधिक होती है, हालाँकि यह भी कुछ बीमारियों से ग्रस्त हो सकती हैं, जो कि अनुचित प्रबंधन के साथ शरीर की प्रतिरक्षा में कमी के कारण होती है। सही समय पर उचित उपचार से मृत्युदर में कमी की जा सकती है।

एकीकृत प्रणाली में चारा उत्पादनः एकीकृत प्रणाली में पशुधन से अधिक लाभ प्राप्त करने के लिए अच्छी गुणवत्ता वाले चारे का उत्पादन आवश्यक है, चारे की खेती मिट्टी की उर्वरता और मिट्टी, पानी की क्षमता को बेहतर बनाती है, जबकि फलीदार फसलें मिट्टी को पोषक तत्वों विशेष रूप से नाइट्रोजन से समृद्ध करती है, अतः पशु पालन से उच्च दूध व माँस उत्पादन प्राप्त करने के लिए फलीदार चारा अति आवश्यक है, इसे अनाज व घास वाली फसलों के साथ मिलाकर देने से सान्द्र मिश्रण पर लागत खर्च कम होता है।

चारा उत्पादन बढ़ाने के तरीकेः

- उच्च उपज वाली चारा फसल की किस्में उगाना।
- फलीदार चारा फसल को अन्य फसलों के साथ उगाकर अधिक उत्पादन प्राप्त करना।
- रेलमार्ग, सड़क किनारे, भूमि, झील, तालाब के पास चारा फसल या वृक्ष उगाकर चारा उपलब्धता बढ़ाना।
- कृषि भूमि के बीच आने वाले फल वृक्ष, आम, अमरूद, नींबू, नारियल, इमली इत्यादि को बीच में उगाने से अच्छा लाभ मिलता है।
- सिंचाई व वर्षा आधारित भूमि दोनों के लिए उपयुक्त फसलों का चयन करना चाहिए।
- मिट्टी परीक्षण के आधार पर चारा फसलों का चयन किया जाना चाहिए।

अजोला और पंचगव्य के माध्यम से समेकित कृषि प्रणालीः

भारतीय अर्थव्यवस्था में पशुधन की एक विशेष भूमिका है, देश के कुल राजस्व का एक चौथाई हिस्सा कृषि से आता है, जिसमें पशुपालन 33 प्रतिशत योगदान देता है, पशुधन गांवों में आजीविका का एक महत्वपूर्ण साधन है, जिससे किसानों की आर्थिक स्थिति में सुधार करने में मदद मिलती है।

छोटे और सीमांत किसानों के लिए रोजाना आय का जरिया दुधारू गाय का पालन एक महत्वपूर्ण व्यवसाय माना जाता है, इन दुधारू पशुओं का पालन काफी हद तक पेड़ों के अवशेषों जैसे पुआल और चारे के डंठल पर निर्भर रहता है, जो इनके कम दुग्ध उत्पादन की वजह है।

एकीकृत कृषि प्रणाली में अजोला को चारे और जैविक खाद के रूप में उपयोग किया जा सकता है। वर्तमान में अजोला एक गैर–रासायनिक उर्वरक आधारित वैकल्पिक चारा बन गया हैं इसलिए यह सभी पशुधनों के लिए अनुकूल है। इसका उपयोग प्रोटीन फीड के रूप में करके हम उत्पादन लागत को कम कर सकते हैं।

भारतीय कृषि व्यवसाय प्रकृति से जुडा हुआ है, हमारे किसान न सिर्फ प्रकृति प्रेमी है, बल्कि पशुधन से प्राप्त विभिन्न उत्पाद जैसे गाय का गोबर, मुर्गियों का मल, सूखे घासफूस, कुडा–करकट इत्यादि को उर्वरक के रूप में उपयोग करते हैं, जो मानवजाति को स्वस्थ व धनी जीवन प्रदान करती है। परंतु वर्तमान में सिंथेटिक उर्वरक मृदा की उर्वरता को कम करते जा रहे हैं एवं मानव स्वास्थ्य पर विपरीत प्रभाव डाल रहे हैं। यदि हम पशुधन आधारित जैविक खाद, पंचगव्य आदि का उपयोग करें तो कृषि व चारा फसलों में रोग की घटनाएँ कम होगी व मिट्टी की उर्वरता भी बढ़ेगी।

समाप्त

अर्चना वर्मा,* श्रवण कुमार, शिरन के॰, सुरेश एन॰वी॰ एवं प्रवीण कुमार
भाकृअनुप–केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर–342003 (राजस्थान)
E-mail: archana.verma1@icar.gov.in

कार्बन अधिग्रहण के लिए शुष्क क्षेत्र में कृषि वानिकी–एक विकल्प

वैश्विक जलवायु परिवर्तन आज के समय में मनुष्य के लिए एक बड़ी समस्या तथा खतरा बन गया है। जलवायु परिवर्तन के कारण सुखा, बाढ़ और अकाल की शीघ्र पुनरावृति से कारण लाखों लोगों और पशुओं के जीवनयापन के लिए खतरा उत्पन्न हुआ है। ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन में अत्यधिक वृद्धि हुई है। जिससे वर्ष 1750 के बाद कार्बन डाईऑक्साइड गैस में 31 प्रतिशत वृद्धि देखी गई है (आई.पी.सी.सी. 2001)। जलवायु परिवर्तन अब एक वास्तविकता बन गया है, परिणामस्वरूप शुष्क क्षेत्रों को इसका सामना अनियमित वर्षा, तापमान बढ़ने और अन्य चरम घटनाओं के रूप में करना पड़ेगा। विश्व में विभिन्न अतंरराष्ट्रीय पर्यावरण संगठन, क्योटो प्रोटोकॉल के स्वच्छ विकास तंत्र (सीडीएम) के तहत कुछ और गैरसरकारी संगठनों ने ग्रीन हाउस गैसों के बढ़ते उत्सर्जन से निपटने के लिए अधिक वृक्षारोपण परियोजनाओं पर जोर दिया है। कई अन्य भूमि उपयोग प्रणालियों के साथ–साथ कृषि–वानिकी भी कार्बन भण्डारण की क्षमता रखती है। कई अनुसंधानों से यह सिद्ध हो चुका है कि कृषि–वानिकी कई प्रकार से ग्रामीण समुदायों, जन–जीवन, देश की अर्थव्यवस्था और साथ ही हमारे पारिस्थितिकी तंत्र को प्रचूर मात्रा में लाभ प्रदान करती है।

कार्बन पृथक्करण के माध्यम से जलवायु परिवर्तन और ग्रीन हाउस गैस को कम करने में कृषि–वानिकी प्राकृतिक के संसाधनों (पोषक तत्व, प्रकाश और पानी) के उपयोग की अधिक दक्षता एकल फसल प्रजाति प्रणाली की तुलना में अच्छी जानी जाती है। इसलिए कृषि–वानिकी की आवयश्कता दिनोंदिन बढ़ती जा रही है, क्योंकि यह न केवल लम्बे समय तक कार्बन को अधिग्रहण की क्षमता रखता है बल्कि कई तरह की बंजर भूमि को भी कृषि वन में परिवर्तित करने की क्षमता रखता है।

शुष्क भूमि में कृषि–वानिकी

शुष्क प्रदेशों में कृषि–वानिकी भूउपयोग की प्रमुख प्रणालियों में से एक है। विश्व की कुल भूमि का 47.2 प्रतिशत (6.15 अरब हैक्टर) क्षेत्र है। 3.5 से 4.0 अरब हैक्टर भूमि या तो रेगिस्तान है या रेगिस्तान बनने की ओर बढ़ रही है। भारत में 30 लाख हैक्टर से अधिक शुष्क/मरू भूमि का विस्तार है। यह भूमि भी अन्य मरू भूमि की तरह कम वर्षा, उच्च वाष्पीकरण और हवा की अत्यधिक गति जैसे कारणों से ग्रसित है। शुष्क क्षेत्रों में मानव जीवन खतरे में है, लगभग 6 लाख वर्ग किलोमीटर शुष्क क्षेत्र (10 प्रतिशत) में शुष्क भूमि का अवक्रमण जारी है। विकासशील देशों में शुष्क क्षेत्रों में प्रति वर्ष भूमि के अवक्रमण से अनुमानतः 4–8 प्रतिशत राष्ट्रीय घरेलू उत्पाद में गिरावट होती है। शुष्क क्षेत्रों को परिभाषित करने या कोई भी योजना बनाने में इन क्षेत्रों की कम वर्षा (500 मि.मी. से नीचे या आर्द्रता सूचकांक 0.20 से नीचे) बहुत ही महत्वपूर्ण है। इसलिए ऐसे क्षेत्रों में पारिस्थितिकी तंत्र और सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक कारक बहुत ही चुनौतिपूर्ण है। उच्च गति से हवा तथा सौर ताप वर्षा की परिवर्तनशीलता पर ज्यादा प्रभाव डालते हैं और परिस्थितिकी तंत्र को कमजोर करते हैं, जिससं थोड़ी सी छेड़खानी से परिस्थितिकी तंत्र की स्थिरता को नुकसान पहुँचता है और कभी–कभी यह अवस्थाएं अपरिवर्तनीय होती है। बहुत सी बाधाओं के कारण शुष्क क्षेत्र विभिन्न प्रकार की अवस्थाओं के लिए अनुपयोगी हैं तथापि खाद्य–सुरक्षा के साथ–साथ जलवायु परिवर्तन को कम करने और उसके लिए अनुकूलित करने के लिए स्थिरता की आवयश्कता है। शुष्क क्षेत्र

की स्थानीय आबादी को क्षेत्रीय और वैश्विक स्तर पर विभिन्न प्रकार के अवसर और लाभ प्रदान करते हैं। शुष्क क्षेत्रों में जीवन चर और चरम जलवायु स्थितियों के साथ विकसित हुआ और इसमें अपेक्षाकृत उच्च स्थानिक प्रजातियाँ शामिल हैं। ये सभी प्रजातियाँ आनुवंशिक संसाधनों का प्रतिनिधित्व करती है जो भविष्य में जलवायु परिवर्तन के अनुकूलन में विशेष रूप से महत्वपूर्ण है।

कृषि–वानिकी मरू क्षेत्र में पारिस्थितिकी और पर्यावरणीय लाभ प्रदान करने के साथ ही संरचनात्मक विविधता के साथ बेहतर उत्पादन प्रदान कर सकती है। यह एक ऐसी प्रणाली है जो पारिस्थितिकी तंत्र व खाद्य और आय सुरक्षा को एक साथ जोड़ती है। कृषि–वानिकी का शुष्क क्षेत्रों में मुख्य लक्ष्य जलवायु की अवस्थाओं और पर्यावरणीय घटकों को कम करते हुए विविधता प्राप्त करना होना चाहिए। शुष्क क्षेत्र में उपलब्ध प्राकृतिक संसाधनों को समुचित रूप से मौद्रिक और पारिस्थितिकी समृद्धि प्रदान करने के लिए उपयोग किया जाना चाहिए।

वृक्षों के साथ चारा और खाद्य फसलों को सम्मिलित करने से मानव व पशुधन की आवश्यकता के उत्पाद प्राप्त करके शुष्क और अर्द्ध–शुष्क क्षेत्रों में स्थिरता लाई जा सकती है। साथ ही विभिन्न एकीकृत कृषि प्रणालियों जैसे जुताई संरक्षण, एकीकृत पोषक प्रबंधन, फसलों के आवर्तन तथा जल संरक्षण से पर्यावरणीय स्थिरता को बढ़ाने में लाभ मिलता है।

शुष्क भूमि में मृदा की कार्बन भण्डारण क्षमता

मृदा में वनस्पति की तुलना में कार्बन लगभग तीन गुणा अधिक और वातावरण में मौजूद कार्बन से दोगुना होता है। पौधे वातावरण से कार्बन डाईऑक्साइड लेते हैं और इसे प्रकाश संश्लेषण के माध्यम से बायोमास के रूप में सम्मिलित करते हैं। इसमें से कुछ कार्बन वायुमण्डल में वापस उत्सर्जित हो जाता हैं लेकिन जो रह जाता है, जीवित और मृत पौधों के अंश कार्बन भण्डार बन जाते हैं। मृत पौधे मृदा के कार्बन भण्डार को बढ़ा देते हैं। विशेष रूप से शुष्क क्षेत्रों में विश्व के कुल कार्बन भण्डार का 27 प्रतिशत है। मृदा गुण एवं कार्बनिक पदार्थ की रासायनिक संरचना कार्बन भण्डारण के लिए भूमि की विभिन्न क्षमताओं का निर्धारण करती है जिसे ग्रीनहाउस गैसों का भण्डार करने के लिए सीधा निहितार्थ किया है। एक और वैश्विक अध्ययन के अनुसार पता चला है कि शुष्क क्षत्रों में कार्बन भण्डार वैश्विक भण्डार का एक तिहाई से अधिक है। मध्य पूर्व और अफ्रीका जैसे शुष्क देशों में कार्बन भण्डार बहुत अधिक अनुपात में पाया गया है। जबकि अफ्रीका और दक्षिण एशिया जैसे क्षेत्रों में नम वनों में कार्बन भण्डार बहुत अधिक है, परन्तु शुष्क क्षेत्रों में कार्बन भण्डारण फिर भी महत्वपूर्ण है। सफल शुष्क भूमि कृषि के लिए मृदा, पानी, फसलों और पौधों के पोषक तत्वों के एकीकृत प्रबंधन की आवश्यकता होती है। बढती हुई मानव और पशुधन आबादी के कारण शुष्क इलाकों में मिट्टी पर दबाव बढ रहा है। वर्तमान संदर्भ में हमें ऐसे तरीकों का पता लगाना चाहिए जिनसे भविष्य में मृदा की सुरक्षा को बनाए रखा और बढाया जा सके, जोकि उर्वरक, खाद और पानी की समस्याओं को कम करने के लिए केन्द्रित हो। साथ ही मृदा संरक्षण के लिए मेडबंदी, पलवार, फसल चक्र और जुताई पद्धतियों से मृदा की नमी को संरक्षित किया जाये और मिट्टी में पोषक तत्वों का संतुलन किया जाये जिससे मृदा में कार्बन भण्डारण बढ़ाया जा सके।

कृषि–वानिकी के माध्यम से शुष्क क्षेत्रों में अधिक कार्बन भण्डारण के लिए उपयुक्त कारक

कृषि–वानिकी, मिश्रित फसल तथा वन चरागाह जैसी पद्धति राजस्थान में कृषि की पारम्परिक पद्धतियाँ है। अध्ययनों के अनुसार खेजड़ी तथा बेर कृषि–वानिकी प्रणालियों में बाजरा, मूंग, ग्वार आदि फसलों के उत्पादन में वृद्धि पायी जाती है, जिसमें यह प्रणाली शुष्क क्षेत्र के कठोर मौसम में किसानों की उपज और आजीविका बढ़ाकर उनका सामाजिक और आर्थिक उत्थान करती है। शुष्क क्षेत्रों के वृक्षों द्वारा किसानों को

विभिन्न प्रकार के उत्पाद प्राप्त होते हैं, जैसे भोजन, चारा, लकड़ी आदि। शुष्क क्षेत्रों में वृक्षों के उत्पाद का पशुपालन के लिए उच्च गुणवतायुक्त चारे की उपलब्धता बढ़ाने में उल्लेखनीय योगदान है सुखे मौसम के दौरान पेड़ों से पशुओं को प्रोटीनयुक्त आहार उपलब्ध होता रहता है। इसलिए कृषि–वानिकी इन क्षेत्रों में कृषि के साथ–साथ आवश्यक पूरक की भूमिका निभाता है और इस प्रकार की कृषि–वानिकी प्रणालियों को किसानों के बीच बढ़ावा देना चाहिए, जोकि आज के समय की जरूरत है।

शुष्क क्षेत्रों में किसानों के लिए कार्बन भण्डार का दायरा

शुष्क क्षेत्रों की विशेषता है उच्च तापमान, उच्च वाष्पीकरण, अत्यधिक कम और अनियमित वर्षा तथा ज्यादातर समय अकाल की स्थिति है। साथ ही मरुस्थलीकरण, मृदा अपरदन, उच्च हवा और भूमि अवक्रमण पहले से प्रचलित कठोर जलवायु परिस्थितियों की समस्या को बढ़ाते हैं। यहाँ पर कृषि–वानिकी एक परम्परागत भूमि उपयोग की प्रणाली के रूप में प्रचलित है। बायोमास के रूप में कार्बन के भण्डारण के लिए अधिक से अधिक वृक्षों का रोपण किया जाना चाहिए। किसानों को उनके खेतों में कार्बन भण्डारण के लिए कार्बन क्रेडिट के बाजार मूल्य के अनुसार मुआवजा दिया जाए। इसके साथ ही अपने खेतों पर अपनाई जाने वाली कार्बन भण्डारण विधियाँ फसल की उत्पादकता में भी लाभदायक होगा। सी.डी.एम. परियोजनाओं के तहत यू.एन.एफ.सी.सी. द्वारा जारी किये गए आंकड़ों के अनुसार प्रति कार्बन क्रेडिट एक टन जब्त कार्बन डाईआक्साइड के बराबर है। इसलिए विभिन्न प्रकार के उपयोग के कारण कृषि–वानिकी शुष्क क्षेत्र में विशेषकर देश के उत्तर–पश्चिमी हिस्सों में जलवायु परिदृश्य को बदलने में अहम भूमिका निभा सकता है।

निष्कर्ष

कृषि–वानिकी पारिस्थितिकी तंत्र उपरोक्त सेवाओं के साथ–साथ और भी कई लाभ प्रदान करता है तथा कार्बन भण्डार में एक बड़ी भूमिका अदा करता है। आजीविका के लिए भारत के शुष्क क्षेत्रो में कृषि–वानिकी एक पारम्परिक प्रणाली है हालांकि कार्बन भण्डारण के अध्ययनों की बहुत कमी है। किसान प्रत्येक टन कार्बन डाईऑक्साइड से कार्बन क्रेडिट प्राप्त कर आर्थिक रूप से लाभ ले सकता है। इसलिए कृषि–वानिकी भारत के शुष्क क्षेत्रों के किसानों को आर्थिक व पारिस्थितिकी लाभ पहुँचाने में प्रमुख भूमिका निभा सकता है।

शुष्क क्षेत्र में कृषि–वानिकी प्रणाली
(रोहिड़ा + मौठ)

ऊंट और बकरियां वृक्ष+चारागाह प्रणाली
में चारा चरते हुए

समाप्त

इन्दीवर प्रसाद* एवं अनिल चिन्चमलातपुरे
भाकृअनुप–केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र, भरूच–392012 (गुजरात)
E-mail: indivar1234@gmail.com

गुजरात में लवणीय काली मृदा हेतु उपयुक्त रबी मक्का की प्रजातियाँ

गेहूँ तथा चावल के बाद मक्का विश्व की तीसरी सबसे महत्वपूर्ण फसल है। सभी खाद्यान्न फसलों में मक्का की उत्पादन क्षमता सबसे अधिक है। अतः मक्का को सभी खाद्य फसलों की रानी माना गया है। पूरे विश्व में मक्का 166 से ज्यादा देशों में उगाया जाता है। वैश्वीकरण के इस युग में भारत में आहार से जुडी प्रवृत्तियों में नित नए बदलाव हो रहे हैं। भारत में भी भोजन में मांसाहारी लोगों की संख्या में लगातार बढ़ोत्तरी हो रही है। मक्का का उपयोग सबसे ज्यादा कुक्कुट आहार में हो रहा है। इसके अलावा मानव आहार, पशु आहार, स्टार्च निर्माण, मदिरा एवं बीज हेतु भी महत्वपूर्ण उपयोगिता है। मक्का से लगभग 1000 प्रकार के विभिन्न व्यंजन तैयार किये जाते हैं। आजकल शहरों के आस–पास हरे भुट्टे हेतु इसकी खेती की जा रही है। मक्का को ना केवल विभिन्न परिस्थितियों में उगाया जाता है बल्कि दाना, भुट्टा, चारा, बेबी कॉर्न, पॉप कॉर्न इत्यादि अनेक रूपों में प्रयोग किया जाता है। यही कारण है कि वर्तमान परिप्रेक्ष्य में भारत में मक्का का अधिक उत्पादन सुनिश्चित करना अति आवश्यक है।

पिछले कुछ वर्षों के दौरान भारत में मक्का उत्पादन में नए कीर्तिमान स्थापित हुए हैं। वर्ष 2016–17 में 86.9 लाख हैक्टर क्षेत्र में मक्के की खेती से कुल 215.1 लाख टन मक्का उत्पादन हुआ (तालिका 1)। इस वर्ष के दौरान मक्का की उत्पादकता 2509 किलोग्राम प्रति हैक्टर रही। गुजरात राज्य में 3.9 लाख हैक्टर क्षेत्रफल में मक्का उगाया गया जिससे 5.7 लाख टन उत्पादन हुआ तथा इसकी उत्पादकता 1478 किलोग्राम प्रति हैक्टर रही। मक्का पूरे भारत में लगभग सभी राज्यों में उगाया जाता है। मक्का की विशेषता यह है कि इसे खरीफ, रबी एवं जायद तीनों ऋतुओं में उगाया जा सकता है। विश्व के कुल मक्का उत्पादन में भारत का करीब 3 प्रतिशत योगदान है। मक्का की 80 प्रतिशत खेती खरीफ में की जाती है जबकि 20 प्रतिशत खेती रबी एवं जायद ऋतु में होती है।

भारत में मृदा एवं जल की लवणता सतत कृषि उत्पादन के लिए एक बहुत बड़ी समस्या है। पूरे भारतवर्ष में 67.4 लाख हैक्टर भूमि मृदा लवणता की समस्या से ग्रसित है। केवल गुजरात राज्य में ही 22 लाख हैक्टर भूमि लवणता से ग्रसित है जो देश में सर्वाधिक (32 प्रतिशत) है। लवणीय मृदाओं में फसल उत्पादन में वृद्धि हेतु निम्नलिखित तरीके अपनाए जा सकते हैं :

- फसल की आवश्यकता के अनुसार मृदा में सुधार करना अथवा
- मृदा की लवणता के अनुसार फसलों का चयन करना।

तालिका 1 : वर्ष 2016–17 में मक्का का क्षेत्रफल, उत्पादन एवं उत्पादकता

	क्षेत्रफल (मिलियन हैक्टर)	उत्पादन (मिलियन टन)	उत्पादकता (कि.ग्रा./हैक्टर)
विश्व	179	10110	5640
भारत	86.9	215.1	2509
गुजरात	3.90	5.7	1478

लवणीय मृदाओं में फसलों की सहनशीलता में काफी भिन्नता पाई जाती है। इसलिए मृदा की लवणता के अनुसार फसलों का चयन काफी महत्वपूर्ण हो जाता है। लवण प्रभावित मृदाओं के प्रबंधन हेतु उपलब्ध विभिन्न तकनीकों में लवण सहिष्णु फसलों तथा उनकी किस्मों का चयन, खेती का कम व्यय, तथा क्षेत्रफल में विस्तार और आसान कार्यान्वयन के सर्वश्रेष्ठ विकल्प है।

मक्का पश्चिमी भारत और विशेष रूप से गुजरात राज्य के लिए एक महत्वपूर्ण फसल है जहाँ इसे अनाज और चारे के दोहरे उपयोग के लिए उगाया जाता है। गुजरात में दुग्ध उद्योग क्षेत्र में विकास की तीव्र गति को ध्यान में रखते हुए काली मृदा वाले क्षेत्र, जिनमें लवण प्रभावित क्षेत्र भी शामिल है, मक्का के क्षेत्रफल एवं उत्पादन में वृद्धि की अत्यंत आवश्यकता है। गुजरात राज्य में दुग्ध उत्पादन के क्षेत्र में काफी प्रगति हुई है तथा हरे चारे की बढती हुई मांग को पूरा करने हेतु रबी मक्का एक बेहतर विकल्प है जिससे दानों के साथ–साथ हरा चारा भी प्राप्त किया जा सकता है। राज्य में मक्का की उत्पादकता कम होने के मुख्य कारण मुक्त परागण किस्मों की खेती, मृदा एवं जल की लवणता, अधिक उत्पादन देने वाली लवण सहनशील एवं संकर किस्मों का अभाव इत्यादि है।

हालांकि मक्का की फसल के लिए खरीफ और रबी दोनों मौसम अनुकूल परन्तु खरीफ में दक्षिण–पश्चिमी मानसून के समय अनियमित बारिश के कारण कृषि कार्यों में व्यवधान उत्पन्न होता है। खरीफ ऋतु के समय काली मृदा में जलभराव की समस्या के कारण मक्का की खेती ज्यादा उपयुक्त नहीं होती है क्योंकि मक्का जलभराव के प्रति अतिसंवेदनशील है। रबी में मौसमी बाधाएं कम होती है जिसके कारण कृषि कार्य नियत समय में अच्छी तरह से सम्पन्न हो जाते है। विभिन्न पर्यावरणीय कारकों, किसी भी बड़ी बीमारी और कीटों की अनुपस्थिति के कारण रबी में मक्का की खेती आर्थिक रूप से फायदेमंद होती है। गुजरात में रबी मक्के की खेती के अनुकूलन के प्रमुख कारण निम्न हैं–

- बेहतर सिंचाई प्रबंधन
- कम खरपतवार
- कम तापमान
- पोषक तत्त्वों का बेहतर अवशोषण
- कीटों का कम प्रकोप
- पौधों की अधिक संख्या

गुजरात में रबी मक्का की बुवाई का सबसे उचित समय 15 अक्टूबर से 15 नवम्बर के बीच है। रबी मक्का के साथ–साथ मटर, मेथी, प्याज, लहसुन आदि फसलों की अंतःफसल प्रणाली अपनायी जा सकती है। रबी मक्का की गुजरात के लिए संस्तुत कुछ प्रजातियाँ निम्नानुसार है–

संकर– प्रो 311, बायो 9681, सीडटेक 2324

कम्पोजिट– जी एम 3, गंगा सफेद 2

इन सभी तथ्यों को ध्यान में रखते हुए, लवणीय पानी की सिंचाई से खेती के लिए उपयुक्त मक्का की किस्मों का चयन करने के लिए भाकृअनुप–केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्र, भरूच (गुजरात) के प्रायोगिक फार्म पर 2013–16 के दौरान प्रक्षेत्र प्रयोग किये गए (चित्र 1)। मक्का के 100 से अधिक जननद्रव्य जिनमें संकर किस्में और प्रजातियाँ (सिंथेटिक, कंपोजिट और खुली परागणित

किस्म) दोनों शामिल हैं, को सार्वजनिक क्षेत्र के संस्थानों (भारतीय मक्का अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली, आणंद कृषि विश्वविद्यालय, आणंद आदि) के साथ–साथ निजी बीज कंपनियों (मोनसेंटो इंडिया लिमिटेड, मुंबई, सुभम बीज, हैदराबाद आदि) से एकत्रित किया गया।

चित्र 1: भरूच में रबी मक्के की लहलहाती फसल

लवण प्रभावित काली मृदा में संकर तथा अन्य किस्मों पर दो अलग–अलग परीक्षण किये गए तथा परीक्षण में स्थानीय देसी सफेद मक्का को नियंत्रण (चेक) प्रजाति के तौर पर सम्मिलित किया गया। इन सभी प्रजातियों को नियंत्रित लवणता तथा प्राकृतिक लवणता वाली मृदा में उगाया गया। इन सभी प्रजातियों में 3.0–3.5 डेसीसीमंस/मीटर तक की लवणता वाले जल से सिंचाई की गयी और फसल चक्र के लिए दौरान अनुशंसित कृषि संबंधी सस्य क्रियाओं का पालन किया गया। परीक्षण के आरम्भ में खेत में मृदा की लवणता 4.2 डेसीसीमंस/मीटर. थी जो अंत में 4.6 डेसीसमस/मीटर तक पहुँच गयी।

परीक्षणों में सभी मक्का प्रजातियों में खारे पानी के प्रति अच्छी प्रतिक्रिया पायी गयी (चित्र 2 एवं तालिका 2)। तीन वर्षों के परीक्षण और आंकड़ों के विश्लेषण के बाद डीकेसी –8101 (7742 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर) सबसे अच्छे उपज देने वाले संकर के रूप में उभरा जबकि एसएस –7077 (7264 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर) दूसरे स्थान पर रहा। बायोमास (चारे) के लिए एसएस –7077 (1.43 टन प्रति हैक्टर) सबसे अच्छा हाइब्रिड पाया गया। इसके पश्चात् बायोमास उत्पादन में 900 एम–गोल्ड (1.39 टन प्रति हैक्टर) का स्थान रहा जो कि उत्पादन के मामले में तीसरे स्थान (6685 किग्रा प्रति हैक्टर) पर था।

अच्छी संकर प्रजातियों में अधिक बायोमास तथा बेहतर सोडियम–पोटेशियम आयनों का अनुपात बनाये रखने की क्षमता का उत्पादन से सीधा सम्बन्ध पाया गया (चित्र 3)। डीकेसी–8101 में अन्य किस्मों के मुकाबले खारे पानी की सिंचाई में अधिक प्रोलीन तथा पर्णहरित (क्लोरोफिल) पदार्थ बनाये रखने की क्षमता पाई गयी। खारे पानी की सिंचाई में सार्वजनिक क्षेत्र के संकर प्रकाश और पीएमएच–4 में भी अच्छी उपज क्षमता पायी गयी। खुली परागणित किस्मों और कंपोजिटों में डीएमआरक्यूपीएम–903 (4645 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर) और जीएम–6 (2555 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर) उपज और संबंधित विशेषताओं के लिए उत्तम पाए गए।

इन प्रजातियों में फूल खिलने से पहले और बाद की अवस्था में शीर्ष पत्तों के आयनिक विश्लेषण से पता चला कि फूल खिलने से पहले सोडियम–पोटेशियम आयनों का बेहतर अनुपात लवण सहिष्णुता प्रदान करता है और इस कारण अधिक उत्पादन प्राप्त होता है।

लवण प्रभावित मृदा में खारे पानी की सिंचाई से इन लवण सहनशील प्रजातियों (तालिका 3,4) की खेती के लिए निम्नलिखित सस्य क्रियाओं की संस्तुति की जाती है–

चित्र 2 :खारे पानी की सिंचाई में रबी मक्के की भरपूर उपज

तालिका 2: वर्ष 2015–16 में खारे पानी की सिचाईं में रबी मक्का की प्रजातियों का प्रदर्शन

क्र. सं.	प्रजाति	पर्ण ऊतक में सोडियम–पोटेशियम आयन का अनुपात	उपज (टन प्रति है.)	बायोमास (टन प्रति है.)
1	केशर किंग 919	22.62	8.26	8.40
2	एस एस – 6066	24.81	8.61	8.19
3	एस एस – 7077	14.41	12.45	14.47
4	गोदावरी – 989	18.03	7.56	5.82
5	चौलेंज – 1	14.45	11.13	8.26
6	डी के सी–8101	27.25	11.50	7.86
7	900 एम गोल्ड	16.06	9.83	13.91
8	डी के सी–7074	20.45	5.37	7.41
9	डी के सी–9117	23.47	7.02	10.17
10	प्रकाश	16.12	5.93	6.32
11	जीएम–6	22.41	3.76	6.57
12	जीएवाईएमएच–1	18.09	7.41	7.13
13	जीडब्लूएल –8	17.22	5.39	2.41
14	जीडब्लूएल –15	8.49	6.72	4.74
15	जीवाईएस –705	20.87	3.50	3.37
16	डीएमआरक्यूपीएम–903	13.31	6.83	5.57
औसत		18.63	7.57	7.52
मानक विचलन (एस.डी.)		3.36	1.39	1.85
भिन्नता गुणांक		18.05	30.88	29.91
क्रांतिक भिन्नता (5 प्रतिशत)		5.61	2.12	2.02

इन प्रजातियों के बीज राज्य कृषि विश्वविद्यालयों एवं बाजार से आसानी से प्राप्त किये जा सकते हैं। गुजरात राज्य के लवण प्रभावित क्षेत्रों के किसान जो पहले कम उपज वाली देशी सफेद मक्का की किस्मों

तालिका 3: खारे पानी की सिंचाई के साथ उपयुक्त रबी मक्का की संस्तुत किस्में (3 वर्षों का औसत)

प्रजाति	संकर / प्रजाति	उपज (किग्रा प्रति हैक्टर)	चारा उपज (टन प्रति हैक्टर)
डी के सी–8101	संकर	7742	0.78
एस एस – 7077	संकर	7264	1.43
900 एम गोल्ड	संकर	6685	1.39
जीएम–6 (सफेद मक्का)	प्रजाति	2555	0.66

तालिका 4. रबी मक्के के लिए सस्य क्रियाएँ

बुवाई का समय	**15 अक्टूबर से 15 नवम्बर**
मृदा की लवणता	6 डेसीसीमंस प्रति मीटर तक
बीज की मात्रा प्रति हैक्टर	15–20 कि.ग्रा.
पौधों की संख्या प्रति हैक्टर	83333
पंक्ति से पंक्ति दूरी	60 सें.मी.
पौध से पौध की दूरी	20 से.मी.
बुवाई की विधि	ड्रिलिंग या डिब्लिंग, समतल अथवा रिज–फरों में
सिंचाई जल की लवणता	3–4 डेसीसीमंस/मीटर तक
सिचाई की संख्या	6–7 (आवश्यकतानुसार)
उर्वरक की मात्रा प्रति हैक्टर	100–120 कि.ग्रा. नाइट्रोजन 60 किग्रा. फॉस्फोरस 40 किग्रा. पोटाश

की खेती करते थे, अब इन बेहतर प्रजातियों को अपनाकर मध्यम लवणता वाली काली मृदाओं में अधिक उत्पादन प्राप्त कर सकते हैं।

समाप्त

दस हल राव, आठ हर राना।
चार हलों का, बड़ा किसाना॥

आशा साहू,* सुदेशना भट्टाचार्य, एम॰सी॰ मन्ना, ए॰बी॰ सिंह, ए॰के॰ त्रिपाठी एवं ए॰के॰ पात्रा
भाकृअनुप–भारतीय मृदा विज्ञान संस्थान, भोपाल–462038 (मध्य प्रदेश)
E-mail: asha4u.bhuzone@gmail.com

यथास्थान कम्पोस्ट : मृदा स्वास्थ्य के लिए वरदान

बढ़ती जनसंख्या, शहरीकरण, औद्योगिकीकरण और कृषि में गहनता के कारण शहरी और ग्रामीण कचरा उत्पादन में अत्याधिक की वृद्धि हुई है। पर्यावरण पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना इन अपशिष्टों को पुनःचक्रण करने की आवश्यकता है। कचरे को संवर्धित उत्पाद में परिवर्तित कर एक उपयोगी संसाधन बनाया जा सकता है।

भारत एक घनी आबादी वाला देश है जहाँ हर साल बड़ी मात्रा में कचरा उत्पन्न होता है। ऐसा अनुमान है कि हमारे देश में प्रतिवर्ष लगभग 6793, 3695 और 648 लाख मिलियन टन फसल अवशेष, पशु गोबर और शहरी ठोस अपशिष्ट का उत्पादन होता है। इनमें से एक तिहाई फसल अवशेष, आधा पशु गोबर तथा 14 प्रतिशत शहरी कचरे का पुनःचक्रण कर कृषि क्षेत्र में उपयोग कर सकते हैं। हर एक लाख टन खाद्यान्न उत्पादन पर लगभग 12–15 लाख टन फसल अवशेषों का उत्पादन होता है तथा प्रति वर्ष, हर दस लाख पशु जनसंख्या की वृद्धि से 12 लाख टन गोबर का उत्पादन होता है।

कई क्षेत्रों में, अभी भी शहरी कचरे को खुले (लैंडफिल) में फेंक दिया जाता है। इन कचरे के ढेर से खराब दुर्गंध आती है साथ ही साथ ये कीड़ों, मक्खियों और रोगाणुओं के लिए संभावित प्रजनन का आधार भी बनते हैं। इसलिए इन कचरों का पुनःचक्रण कर कम्पोस्ट बनाना और कृषि क्षेत्र में उपयोग करना ही एकमात्र और सुनिश्चित विकल्प है। जिससे मृदा में कार्बनिक तथा जरूरी खनिज पदार्थ की बढ़ोत्तरी के साथ मृदा स्वास्थ्य भी दुरुस्त होगा। कम्पोस्ट मिट्टी में सूक्ष्मजीवों के लिए ऊर्जा, कार्बन और पोषक तत्वों का एक स्रोत भी है और इस प्रकार मिट्टी के जैविक स्वास्थ्य को भी सुधारते हैं।

कम्पोस्टिंग और इसके महत्व

कचरे से बना जैविक खाद कचरे के निपटान और सुरक्षित पुनःचक्रण के लिए एक वैज्ञानिक और गैर–प्रदूषणकारी सुरक्षित तरीका है। खाद बनने के दौरान, सूक्ष्मजीव जैविक कचरे को ह्यूमस में परिवर्तित करते हैं जो कृषि के क्षेत्र में महत्वपूर्ण है।

विविध उत्पत्ति और संरचना के कचरे से परिपक्व कम्पोस्ट उपयोग के निम्नलिखित लाभ हैं :

- कचरे की भौतिक विशेषताओं को बेहतर बनाता है, जिससे उसे आसानी से कृषि में उपयोग कर सकते हैं।
- कम्पोस्टिंग कार्बनःनाइट्रोजन (सीःएन) अनुपात को कम करता है जिससे पौधों और सूक्ष्मजीवों के बीच पोषक तत्वों के लिए प्रतियोगिता नहीं होती।
- कचरे की मूल मात्रा को आधा कर देता है।
- यह मृदा में पोषक तत्वों के धारण और पुनःचक्रण को बढ़ाता है।
- सूक्ष्मजैविक विविधता को बढ़ाता है और मृदा की गुणवत्ता में सुधार लाता है।
- कम्पोस्ट बनते समय जो उच्च तापमान होता है उसमें कीट नियंत्रण होता है, खरपतवार के बीज नष्ट होते हैं और रोगों से रोकथाम होती है।
- खराब वायतन से उत्पन्न होने वाली समस्याओं को समाप्त करता है जैसे हाइड्रोजन सल्फाइड, मीथेन आदि गैसों का उत्सर्जन कम करता है।

- कम्पोस्ट बनाने के दौरान, विभिन्न सूक्ष्मजीव विषैले पदार्थों एवं प्रदूषकों के जैव अपघटन (बायोरेमेडिएशन) को बढ़ावा देते हैं।

मिट्टी में स्थिर कार्बन स्थिरीकरण के लाभ

भौतिक लाभ

- वायु संचरण में वृद्धि होती है।
- बेहतर बीज अंकुरण होता है।
- जल प्रवाह कम कर अंतःस्पंदन को बढ़ाता है परिणामस्वरूप जल धारण क्षमता में वृद्धि होती है।
- चिकनी मिट्टी की चिपचिपाहट को कम करता है जिससे हल आसानी से चल सकता है।
- सतह की पपड़ी कम कर देता है।

रासायनिक लाभ

- धनायन विनिमय क्षमता (सीईसी) बढ़ जाती है जिससे आवश्यक पोषक तत्वों जैसे कैल्शियम, मैग्नीशियम और पोटेशियम को धारण करने की क्षमता और उसकी आपूर्ति बढ़ जाती है।
- उर्वरक और पानी की उपयोग दक्षता को बढ़ाता है।
- मृदा की प्रतिरोधक क्षमता में सुधार करता है।
- मृदा खनिजों के अपघटन को तेज कर पोषक तत्वों की उपलब्धता बढ़ाता है।

जैविक लाभ

- मृदा जीवों के लिए भोजन प्रदान करता है और नाइट्रोजन स्थिरीकारक जीवाणुओं की क्षमता को बढ़ाता है।
- मृदा में सूक्ष्मजैविक जैव–विविधता और गतिविधि को बढ़ाता है और रोगों और कीटों को कम करने में मदद करता है।
- सूक्ष्मजीवों के क्रियाकलापों द्वारा मृदा को भुरभुरा बनाता है, जिससे पानी का बहना कम हो जाता है।

अपरिपक्व कम्पोस्ट के उपयोग से निम्न समस्याएँ होती है :

- अपरिपक्वता से कई विषाक्त और रोगजनकों का विकास होता है।
- कार्बनःनाइट्रोजन (सीःएन) अनुपात ज्यादा होने के कारण नाइट्रोजन की आपूर्ति में कमी आती है।
- मीथेन और एसिटिक ऐसिड जैसे विषाक्त पदार्थों का उत्पादन होता है।
- उपरोक्त समस्याओं से बचाव हेतु परिपक्व कम्पोस्ट बनाने के लिए कारगर तकनीकियाँ।

कम्पोस्टिंग प्रक्रिया

पृथक्करण : एक प्रदूषण मुक्त, अच्छी तरह से विघटित गुणवत्ता वाला खाद प्राप्त करने के पृथक्करण लिए सबसे महत्वपूर्ण चरण है। अगर अपशिष्ट की मात्रा बड़ी (50 टन प्रति दिन) हो तो छानने वाली मशीन का उपयोग करना चाहिए। लोगों को पुनःचक्रण की सामग्री के अलगाव के लिए जागरूकता कार्यक्रम करना चाहिए या फिर इलेक्ट्रॉनिक मीडिया, सामाजिक कार्यकर्ताओं या गैर सरकारी संगठनों की मदद लेनी चाहिए।

खाद बनाने की प्रक्रिया के सात चरण है।

- **मीजोफिलिक चरणः** जरूरत के हिसाब से गड्ढे की लंबाई×चौड़ाई×गहराई में बदलाव कर सकते हैं, लेकिन अधिक से अधिक 2 मीटर की गहराई और 2.5 मीटर चौड़ाई होनी चाहिए। नमी की मात्रा 50–60 प्रतिशत, तापमान 15–45^0 सेल्सियस होना चाहिए। सब्सट्रेट के आधार पर अलग–अलग सूक्ष्मजैविक समुदायों (एरोबिक) का स्प्रे कर सकते हैं। इस चरण की कुल अवधि 10 दिन की होती है और फिर कचरे को पलटा जाता है और यदि आवश्यक हो तो कल्चर को फिर से डाला जाता है।
- **थर्मोफिलिक चरणः** इस चरण में तापमान 45^0 से 70^0 सेल्सियस तक पहुँच जाता है। कुल अवधि 14 दिनों की होती है। यह वायुवीय प्रक्रिया है इसलिए पलटना जरूरी है।
- **द्वितीय मीजोफिलिक चरणः** इस चरण के दौरान अपघटन प्रक्रिया स्पष्ट दिखती है और पलटने के दौरान भाप का निकलना जारी रहता है। यदि जरूरी हो तो भी इस चरण में कुछ कल्चर को डालें और 50 प्रतिशत नमी बनाए रखें। पहले मीजोफिलिक चरण से भिन्न मीजोफिलिक जीवों की जनसंख्या होती है। यह चरण करीब 7 दिनों का होता है।
- **ठंडा करने का चरणः** बैक्टीरियल/सूक्ष्मजीवों की गतिविधि 50 प्रतिशत घट जाती है परंतु उनके वर्गीकरण और चयापचय विविधता में बढ़ोत्तरी होती है। विस्तृत विश्लेषण से पता चलता है कि जैविक ऑक्सीकारकों से सेल्यूलोज, हेमीसेलुलोज, लिग्निन, मोम, वसा को विघटित किया है।
- **परिपक्वता चरणः** इस चरण में हयूमस का बनता है। ज्यादातर कवक, (सेलुलोज और लिग्निन अपघटनकारी) अपशिष्ट, उनके अपघटन और एन्जाइम गतिविधि के लिए जिम्मेदार होते है।
- **छाननाः** अच्छी तरह से विघटित सामग्री को 4 मिमी. छलनी और हवा वर्गीकरण मशीन के माध्यम से पारित करते हैं। यह सुनिश्चत किया जाता है कि कोई प्रदूषक छलनी के माध्यम से पारित ना हो और कॉंच के टुकड़ों को हवा वर्गीकरण प्रणाली के माध्यम से हटा देते हैं।
- **हयूमीफिकेशनः** इस चरण में हयूमस पूरी तरह से तैयार हो जाता है जोकि खाद का अंतिम उत्पाद है। हयूमस काला, भूरा, उच्च आण्विक वजन, उच्च धनायन विनिमय क्षमता और पादप पोषक तत्व भरपूर होता है। हयूमस फल्विक एसिड और ह्यूमिन से बना है। यह पोषक तत्वों की आपूर्ति, जल धारण क्षमता और मृदा निर्माण के लिए जिम्मेदार होता है।

सब्जी मंडी के कचरे के पुनःचक्रण के लिए यथास्थान (त्वरित) कम्पोस्ट तकनीक

आज के समय की मांग है त्वरित कम्पोस्ट जोकि कम समय में अच्छी गुणवत्ता का खाद प्रदान करे। यह तकनीक रसोई से निकले कचरे और सब्जी मंडी के कचरे के पुनःचक्रण के लिए विशेष रूप से उपयुक्त है। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के भोपाल स्थित दो व मऊ स्थित एक संस्थान के सहयोग से इस तकनीक को विकसित किया गया है।

आवश्यक सामग्री

100 किलोग्राम कम्पोस्ट तैयार करने के लिए, 150 किलोग्राम ताजा बायोमास (अपशिष्ट पदार्थ), 50 किलोग्राम ताजा गोबर, 1.1 किलोग्राम यूरिया, 50 ग्राम कवक (कल्चर) (10^5 जिंदा सेल), बैक्टीरियल 1 लीटर (10^8 जिंदा सेल), और 1 लीटर एक्टीनोमाइसीडस (10^8 जिंदा सेल) की आवश्यकता होती है।

चित्र 1: त्वरित कम्पोस्ट बनाने के विभिन्न चरण

मुख्य विशेषताएं

- 100 किलोग्राम की क्षमता की एक तकनीक विकसित की गई है, जिसमें लिग्नोसेलूलोलाइटिक थर्मोफिलिक जीवों का उपयोग, विघटन में तेजी लाने के लिए किया जाता है। (चित्र 1)
- जैव अपशिष्ट सामग्री जैसे घरेलू और वनस्पति कचरे को इकट्ठा कर सुखाया जाता है।
- अपशिष्ट पदार्थों के साथ ताजा गोबर को 1:0.2 (शुष्क भार) के अनुपात से मिलाया जाता है।
- माइक्रोबियल कंसोर्टिया को 7 दिन और 14 दिनों में मिलाया जाता है ताकि विघटन में तेजी आ सके।
- 60 प्रतिशत नमी और 55° सेल्सियस तापमान पर पहले 21 दिनों तक रखा जाता है।
- हवा और सही मिश्रण के लिए ड्रम को हाथ वाले पैडल से घूमाया जाता है।

त्वरित कम्पोस्टिंग के लाभ और प्रभाव

- घरेलू और सब्जी कचरे से 1–1.5 महीने के भीतर कम्पोस्ट तैयार हो जाता है।
- खाद के गुणों में सुधार हो जाता है कुल नाइट्रोजन 0.89 से बढ़कर 1.75 प्रतिशत हो जाती है।
- अपघटन के 30 दिनों में कम्पोस्ट का रंग गहरा भूरा रंग और यह गंध रहित होता है।
- परिपक्व कम्पोस्ट का सी:एन अनुपात 14:1, धनायन विनिमय क्षमता 94 सेंटिमोल प्रति किलो। लिग्निन : सेलूलोज अनुपात बढकर 2.4 प्रतिशत, सीइसी:टीओसी अनुपात 0.27 (प्रारंभिक) से 4.56 तक बढ़ जाता है तथा पानी में घुलनशील कार्बन 0.5 प्रतिशत तक पहुँच जाता है।
- बड़ी मात्रा में कचरे को गुणवत्ता वाले खाद में परिवर्तित कर उसे मृदा में डाला जाता है।
- खाद की प्रक्रिया के दौरान उच्च तापमान पर रोगजनकों और खरपतवार के बीज जीवित नहीं रह पाते और मर जाते हैं।

ग्रामीण और शहरी कचरे की पुनःचक्रण के लिए केंचुआ खाद (वर्मीकम्पोस्टिंग)

जैविक कचरे जैसे पशुओं का मलमूत्र, रसोई अपशिष्ट, कृषि अवशेष, पेड़ों के पत्तों को केंचुओं की मदद से उपयोगी खाद में परिवर्तित करने का एक बहुत प्रभावी तरीका है वर्मीकम्पोस्टिंग।

वर्मीकम्पोस्टिंग के लिए आवश्यकताएँ

- छायादार पेड़ के नीचे जिसके आस–पास पानी का स्त्रोत हो वहाँ 10×3×1.5 फीट गड्ढे (जमीन के ऊपर) बनाते हैं।
- ईट की दीवारों में वातन की सुविधा के लिए 10 सेंमी. व्यास वाले 5–6 छेद किए जाते हैं। इन छेदों में नायलोन जाल लगाया जाता है ताकि केंचुएं बाहर ना निकल सकें।

- 2 महीने पुराने गोबर की 3–4 सेंमी. मोटी परत गड्ढे के तल पर फैला देते हैं। कटे, सूखे हुए जैविक कचरे को गोबर के साथ 1:1 के अनुपात में मिश्रित कर एक परत बिछाई जाती है इस प्रकार परत दर परत 1.5 फुट की ऊँचाई तक बनाई जाती है।
- जब सामग्री आंशिक रूप से विघटित हो जाती है, तब केंचुओं की प्रजातियों यूसीना फिटिडा, यूड्रीलस यूजेनी और पेरियोनीक्स एक्सकेवेटस (भारतीय मृदा विज्ञान संस्थान द्वारा पहचानी गई) को एक किलोग्राम प्रति 100 किलोग्राम अपशिष्ट सामग्री के आधार पर प्रत्येक गड्ढे में मिलाया जाता है (चित्र 2)।
- केंचुओं को डालने के तुरंत बाद पानी छिड़का जाना चाहिए। नमी का स्तर 60–70 प्रतिशत पर रखा जाता है। जूट बैग (बोरे) को उपयुक्त नमी और तापमान को बनाए रखने के लिए सामग्री की सतह पर समान रूप से फैला देते हैं।

केंचुआ खाद के लाभ

- जैविक कचरे/फसल/पशु अवशेषों से 1.5 –2.5 महीने के भीतर वर्मीकम्पोस्ट तैयार हो जाता है।
- वर्मीकम्पोस्ट पादप पोषक तत्वों का भंडार है।
- यह मृदा के भौतिक, रासायनिक और जैविक गुणों को बढ़ाता है और इसलिए फसल उत्पादकता में सुधार होता है।
- यह जैविक खाद उत्पादन के लिए आर्थिक रूप से लाभप्रद और पर्यावरण की दृष्टि से सुरक्षित पोषक तत्व पूरक है।
- यह एक आसानी से ग्रहणीय कम लागत की तकनीक है।
- 10 गड्ढों (10×3×1.5) से 3 टन वर्मीकम्पोस्ट का उत्पादन किया जाता सकता है। केंचुए की लागत 400 रुपये प्रति किलाग्राम है। वर्मीकम्पोस्ट का एक 50 किलोग्राम का बैग 250 रुपये में बेचा जा सकता है। (5000 रुपये प्रति टन) यह तकनीक पारंपरिक पद्धति की अपेक्षा कचरे को तेजी से विघटित के मामले में बेहतर है।
- वर्मीकम्पोस्ट में पोषक तत्वों की मात्रा परंपरागत खाद की तुलना में अधिक होती है।

वर्मीकम्पोस्ट को 5 टन प्रति हैक्टर की दर से डालना चाहिए। वृक्षों में 1–10 किलोग्राम प्रति वृक्ष (वृक्ष के आकार के अनुसार) डालना चाहिए।

(अ) पेरियोनीक्स एक्सकेवेटस (ब) ईसीना फिटिडा (स) यूड्रीलस यूजेनी

चित्र 2: केंचुए की प्रजातियाँ

प्रदीप नरले* एवं कृष्ण चन्द्र पाण्डेय
भाकृअनुप–केन्द्रीय कृषि अभियांत्रिकी संस्थान, भोपाल – 462 038 (मध्य प्रदेश)
E-mail: pdnarale@gmail.com

सौर जल पम्पिंग प्रणाली का सिंचाई में उपयोग

भारत छह लाख अड़तीस हजार गांवों वाला देश है, जहाँ 65 प्रतिशत से भी अधिक लोग कृषि और उसके संबंधित व्यवसाय से जुड़े हुए हैं। छोटे किसान पूरी तरह से सिंचाई के लिए वर्षाजल और भू–जल पर निर्भर हैं। सिंचाई के लिए भारत सरकार हर साल तीस से चालीस हजार करोड़ रुपये का अनुदान देती है। गणना में यह तथ्य सामने आया है कि भारत में दो करोड़ दस लाख सिंचाई के नलकूप है, जिनमें से 90 लाख डीजल चालित हैं और एक करोड़ बीस लाख विद्युत चालित हैं। देश में संपूर्ण बिजली उत्पादन का 10 से 15 प्रतिशत केवल नलकूंप द्वारा सिंचाई करने हेतु खर्च होती है। नलकूपों के लिए ऊर्जा का स्त्रोत विकासशील देशों के लिए बड़ी समस्या है। भारत में गांव शहरों से दूर–दूर तक बसे हुए हैं। इस कारण ग्रीड प्रणाली वहाँ तक पहुँचाना महँगा पड़ता है। भले ही ईंधन देश में पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हो, लेकिन इस जीवाश्म ईंधन को प्रत्येक जगह पहुँचाना मुश्किल होता हैं। उपरोक्त समस्या के निदान हेतु दूरस्थ गांवों में कृषि के लिए सिंचाई के लिए अक्षय ऊर्जा का उपयोग महत्वपूर्ण विकल्प साबित हो सकता है। अक्षय ऊर्जा प्रणाली का परिवहन दूसरी प्रणालियों से बहुत सरल है क्योंकि इनको टुकड़ों में भेजा और स्थापित किया जा सकता है। सौर जल पम्पिंग प्रणाली कृषि में सिंचाई की जरूरतों को पूरा करने के लिए एक उपयुक्त स्थायी विकल्प है।

सिंचाई के लिये सौर जल पम्पिंग प्रणाली

सौर (फोटोवोल्टिक) ऊर्जा चलित पानी खींचने वाला पम्प गरीब देशों के ग्रामीण स्थानों में जहाँ मजबूत ग्रीड प्रणाली उपलब्ध नहीं है, वहाँ बहुत उपयोगी साबित हो चुका है। सौर जल पम्पिंग प्रणाली में डीजल ईंधन की तरह किसी जीवाश्म ईंधन की जरूरत नहीं होती, इस कारण इस प्रणाली में मरम्मत की जरूरत भी नहीं पड़ती है। इस प्रणाली के उपयोग से लोगों का समय बचता है जिसमें अन्य आवश्यक कार्य किये जा सकते हैं।

ग्रामीण स्थानों में सौर जल पम्पिंग प्रणाली के कारण रोजगार उपलब्ध होता है। महिलाओं और बच्चों द्वारा दूर स्थानों से कठिन परिश्रम करके सिंचाई में जो मेहनत लगती थी उसे कम किया जा सकता है। यद्यपि सौर जल पम्पिंग प्रणाली की शुरूआती लागत अधिक है, लेकिन इसमें मरम्मत और ईंधन की जरूरत नहीं पड़ती और इससे देश की विदेशी मुद्रा भी बचती है। सौर पम्पों को स्थापित करना, चलाना एवं रख–रखाव सरल और विश्वसनीय है, जिसकी वजह से भविष्य में सौर जल पम्पिंग प्रणाली का अधिक विस्तार संभव है।

सौर पम्पिंग की विशेषताएं

सौर फोटोवोल्टिक पैनल सूर्य के प्रकाश से सीधे विद्युत उत्पन्न करता है। यहाँ पर विकिरण प्रत्यक्ष विद्युत धारा में बदलती है और उत्पन्न हुई विद्युत का उपयोग जमीन से पानी निकालने में किया जाता है। पम्प के आकार की संरचना पानी की मात्रा पर निर्भर करती हैं जो फसल की सिंचाई के लिये उपयोगी होती है।

सौर प्रणाली के मुख्य घटक :

सौर जल प्रणाली के तीन घटक होते हैं:

1. सौर फोटोवोल्टिक पैनल 2. नियंत्रक 3. पम्प यूनिट

सौर फोटोवोल्टिक पैनल – सौर फोटोवोल्टिक संयंत्र एक फोटोवोल्टिक मॉडयूल का समूह है जो श्रृंखला श्रेणी में जुड़े होते हैं। यह सौर प्रणाली का एक महत्वपूर्ण घटक है, जिसकी लागत प्रणाली के कुल लागत के 80 प्रतिशत के आसपास होती है। सौर फोटोवोल्टिक प्रणाली का आकार पम्प के आकार, आवश्यक पानी की मात्रा एवं सौर विकिरण की उपलब्धता पर निर्भर करता है।

नियंत्रक – नियंत्रक एक विद्युतीय यंत्र है जो फोटोवोल्टिक शक्ति को मोटर से समानांतर श्रेणी में जोड़ता है और फोटोवोल्टिक निवेश के अनुसार पम्प के कार्य को संचालित करता है।

पम्प यूनिट – पम्प यूनिट में समानांतर मोटर और वास्तविक पम्प का समावेश होता है, जो चलने पर दाब की वजह से पानी को खिंचता है।

लाभ :

- सौर पम्प एक विश्वसनीय और लम्बे समय तक चलने वाली प्रणाली है।
- इसमें मेहनत कम लगती है तथा मरम्मत का खर्च भी कम आता है।
- इसमें किसी प्रकार के ईंधन की आवश्यकता नहीं होती है।
- सौर प्रणाली हटाने, परिवहन और स्थापित करने में सरल है।
- सौर प्रणाली प्रदूषण मुक्त है।

उपयोग :

- इससे दूरदराज के घरों कृषि एवं पशुधन के लिए जल आपूर्ति की जा सकती है।
- इस प्रणाली का उपयोग ग्रामीण इलाकों में पानी की आपूर्ति करने हेतु किया जा सकता है।

भारत सरकार की योजना

किसान की आय में वृद्धि करने और डीजल पंपों पर निर्भरता कम करने के लिए 2018–19 के बजट में भारत सरकार ने सौर ऊर्जा पंप की योजना में लगभग 1.44 लाख करोड़ रुपये के खर्चे को शामिल किया गया है। वर्ष 2018–19 के बजट में घोषित योजना के तहत किसानों को सौर जल पंप प्रणाली के लिए कुल लागत का केवल 10 प्रतिशत देना होगा। किसानों को केन्द्र से 30 प्रतिशत राशि अनुदान के रूप मिलेगी, 30 प्रतिशत लागत राज्य से आएगी और शेष 30 प्रतिशत वित्तपोषण/ऋण के माध्यम से मिलेगी। यह योजना केबिनेट की मंजूरी के बाद कार्यान्वित की जाएगी।

निष्कर्ष

सौर फोटोवोल्टिक जल प्रणाली का उपयोग परम्परागत और फव्वारा सिंचाई पद्धति की तुलना में सूक्ष्म सिंचन पद्धति के लिए अधिक लाभप्रद पाया गया है। यह प्रणाली किसान, डेयरी व्यवसाय, पंचायत संस्थान आदि जिन्हें सिंचाई, बागवानी व पीने के पानी के लिए पंप की जरूरत होती है उनके लिए बहुत उपयोगी साबित होगी। भविष्य में जीवाश्म ईंधन के बढ़ते मूल्य के कारण सौर जल पम्पिंग प्रणाली का उपयोग फसल की सिंचाई के लिए अधिक लाभप्रद होगा।

प्रियरंजन कुमार,* संतोष कुमार बिश्नोई[1], जयपाल सिंह चौधरी, सुदर्शन मौर्य, पी॰ भावना एवं रविशंकर पान
भाकृअनुप–पूर्वी क्षेत्र अनुसंधान परिसर, अनुसंधान केन्द्र, राँची–834010 (झारखण्ड)
[1]भाकृअनुप–राष्ट्रीय पादप आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, क्षेत्रीय केन्द्र, राँची–834010 (झारखण्ड)
*E-mail: ourprk@gmail.com

सब्जियों की स्वस्थ पौध उत्पादन तकनीक

आलू को छोड़कर भारत का सब्जी उत्पादन में विश्व में प्रथम स्थान है। सब्जी की खेती तुलनात्मक रूप से आसानी से की जा सकने वाली, अधिक उपज एवं लाभ देने वाली और ग्रामीण परिवेश में आजीविका तथा रोजगार का एक उत्तम स्रोत है। भारत में टमाटर वर्गीय, कद्दू वर्गीय एवं मटर वर्गीय सब्जियों की खेती मुख्य तौर पर विभिन्न क्षेत्रों में बड़े स्तर पर की जाती है। वर्तमान समय में सब्जी की खेती के माध्यम से उत्पादन बढाने के राष्ट्रीय लक्ष्य में कई प्रकार की चुनौतियाँ है। सब्जियों की खेती मुख्यतः पौध रोपण विधि से की जाती है। अतः स्वस्थ पौध की उपलब्धता सब्जी की खेती की मुख्य समस्याओं में से एक है। इसके लिए विभिन्न सब्जी फसलों के पौध उत्पादन एवं पौधशाला प्रबंधन की वैज्ञानिक विधि के प्रचार प्रसार की आवश्यकता है। पौध उत्पादन एवं पौधशाला प्रबंधन की सामान्य विधि के मुख्य बिंदु विस्तृत विवरण के साथ यहाँ प्रस्तुत हैं।

भूमि का चुनाव एवं तैयारी

सब्जी उत्पादन हेतु अच्छी उर्वरता वाली जैव पदार्थ युक्त मिट्टी का चुनाव करना चाहिए। भूमि की 3–4 बार जुताई करके पाटा लगाकर समतल कर लें। सिंचाई की व्यवस्था के अनुसार उचित आकार की क्यारियाँ बनाएँ।

बुवाई / रोपाई का समय

विभिन्न सब्जियों के लिए बुवाई का समय मौसम के अनुसार अलग–अलग होता है। अनुकूल अवधि में फसल उगाने पर अधिकतम पैदावार प्राप्त होती है जबकि समय से पूर्व या देरी से बुवाई/रोपाई करने से फसल पर कुप्रभाव पड़ता है। विभिन्न सब्जियों की बुवाई/रोपाई का उचित समय तालिका 1 में दर्शाया गया है।

बेल वाली सब्जियों जैसे– कोहड़ा, करेला, खीरा, नेनुवा, तरबूज, लौकी, तुरई की अगेती फसल लेने के लिए पोलीथिन की थैलियों अथवा प्लास्टिक ट्रे में सड़ी हुई गोबर की खाद तथा मिट्टी की बराबर मात्रा से बने मिश्रण को भरकर बीज बोएँ। थैलियों को धूप वाले स्थान पर रखें तथा पारदर्शी पोलिथीन की चादर से ढंक दें। 6 से 8 सप्ताह में पौधे रोपाई योग्य हो जाते हैं। इनकी थालों में उचित दूरी पर रोपाई की जा सकती है।

बीज की मात्रा

सिफारिश की गई मात्रा में बीज का उपयोग करने से पैदावार में वृद्धि होती है जबकि आवश्यकता से अधिक अथवा कम मात्रा में बीज के प्रयोग से उत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव पडता है। विभिन्न सब्जियों के लिए मौसम के अनुसार संस्तुत बीज की मात्रा तालिका 1 में दी गई है।

तालिका 1: विभिन्न सब्जियों के उत्पादन हेतु अनुशंसित क्रियाएं

फसल	बुवाई / रोपाई का समय	बीज की मात्रा किग्रा / हैक्टर	बुवाई / रोपाई की दूरी (सेंमी.)
बैंगन	जुलाई–अगस्त	0.3–0.4	75 × 60
टमाटर	सितम्बर	0.5–0.6	60 × 45
फुलगोभी	क) अप्रैल–मई	0.6–0.650	45 × 30
	(ख) जून–जुलाई	0.500–0.7	45 × 30
	(ग) अगस्त–सितम्बर	0.600–0.700	45 × 45
	(घ) अक्टूबर–दिसम्बर	0.350–0.400	45 × 60
बंदगोभी	(क) सितम्बर–अक्टूबर	0.500–0.600	45 × 30
	(ख) नवम्बर–दिसम्बर	0.400–0.500	60 × 45
फ्रेंचबीन (झाड़ीदार)	सितम्बर–अक्टूबर	0.080–0.100	40 × 10
फ्रेंचबीन (बेलवाली)	जून–जुलाई	60–70	75 × 10
सेम	मई–जून	8–10	100 × 75
भिन्डी	जून–जुलाई	8–10	45 × 20
मटर	अक्टूबर–नवम्बर	70–80	30 × 5
लोबिया (झाड़ीदार)	जनवरी–फरवरी	25–30	40 × 25
	जून–जुलाई	25–30	40 × 25
लोबिया(झाड़ीदार)	जनवरी–फरवरी	35–40	30 × 15
	मई–जून	35–40	40 × 25
प्याज	दिसम्बर–जनवरी	8–10	20 × 10
मिर्च	अगस्त–सितम्बर	0.600–0.700	45 × 30
शिमला मिर्च	अगस्त–सितम्बर	0.600–0.700	45 × 30
कोहड़ा	दिसम्बर	6–7	250 × 125
ग्वार	फरवरी–मार्च	20–25	45 × 45
करेला	दिसम्बर– जनवरी	5–6	100 × 75
खीरा	दिसम्बर– जनवरी	4–5	150 × 75
तुरई	दिसम्बर– जनवरी	5–6	150 × 100
तरबूज	दिसम्बर	3–4	200 × 125
लौकी	दिसम्बर	6–7	250 × 125
तुरई (नसदार)	दिसम्बर–जनवरी	5–6	150 × 75
मूली	अक्टूबर– दिसम्बर	10–12	30 × 5
गाजर	नवम्बर– दिसम्बर	5–6	30 × 5
पालक	अक्टूबर / नवम्बर– दिसम्बर	25–30	30 (कतारों में)
मेथी	नवम्बर– दिसम्बर	20–25	20 (कतारों में)
लेट्यूस	सितम्बर–अक्टूबर	12–15	45 × 30

बुवाई / रोपाई की दूरी

बुवाई / रोपाई की दूरी फसल अथवा किस्म एवं मौसम के अनुसार रखी जानी चाहिए। अधिक बढ़ने वाली किस्मों के लिए कम बढ़ने वाली किस्मों की अपेक्षा पौधों तथा कतारों के बीच अधिक दूरी रखने की आवश्यकता होती है। अनुशंसित दूरी से कम अथवा अधिक रखने पर पैदावार पर प्रतिकूल असर पड़ता है। विभिन्न सब्जियों के लिए मौसम के अनुसार बुवाई / रोपाई की अनुशंसित दूरी तालिका 1 में दी गई है।

मिट्टी में रोग जनक फफूंद के सक्रिय रहने पर पौधशाला में सब्जियों की पौध गलने से किसानों को काफी नुकसान उठाना पड़ता है तथा पौधों की प्रारम्भिक अवस्था में ही हानिकारक कीड़े पौधे या पत्तियों को काटकर और विषाणुजनित रोगों को फैलाकर नुकसान पहुँचाते हैं। अतः इन बिन्दुओं पर उचित ध्यान देकर तथा पोषण की सही जानकारी से स्वस्थ पौध तैयार की जा सकती है।

स्थान का चयन

पौधशाला के लिए ऐसे स्थान का चुनाव करना चाहिए जहाँ जमीन थोड़ी ऊँची हो एवं बरसात के दिनों में जल निकास की उचित व्यवस्था हो। इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि वहाँ सूर्य का प्रकाश पूरे दिन उपलब्ध रहे, सिंचाई का साधन हो तथा निगरानी करना आसान हो। चयनित स्थान की मिट्टी बलुई दोमट या दोमट हो जिसका पीएच मान 7 के लगभग हो।

क्यारियों की तैयारी

पौधशाला में क्यारियाँ बनाने से पहले एक बार गहरी जुताई बहुत आवश्यक है। मिट्टी भुरभुरी बनाने के बाद सभी खरपतवार बाहर निकाल देने चाहिए। खेत की तैयारी के बाद 300 x 100 x 20–30 सेंमी. आकार की क्यारियाँ बनाते हैं। प्रति क्यारी की दर से 10–15 कि.ग्रा. सड़ी गोबर की खाद एवं 1.2 कि.ग्रा. करंज / नीम की खली मिलायें। यदि पौधशाला की मिट्टी भारी हो तो 5–6 कि.ग्रा. प्रति क्यारी की दर से रेत अवश्य मिलायें।

मृदा उपचार

पौधशाला क्षेत्र की मृदा का उपचार बहुत ही आवश्यक है। पौधशाला में लगने वाली बीमारियों की रोकथाम हेतु मिट्टी को सूर्य के तेज प्रकाश से उपचारित करने को सौंर्यीकरण (सोलेराइजेशन) कहते हैं। अप्रैल के प्रथम पखवाड़े में, क्यारियाँ बनाने के बाद पर्याप्त नमी होने पर सफेद पारदर्शी प्लास्टिक की चादर से ढक कर चारों तरफ से मिट्टी से दबा देते हैं। ऐसा करने से क्यारी से हवा एवं भाप बाहर नहीं निकलती है। क्यारियों को इसी प्रकार से 40–50 दिनों तक ढका रखने से अधिक तापमान (52°–55° सेल्सियस) के कारण बहुत से रोग पैदा करने वाले सूक्ष्मजीव स्वतः नष्ट हो जाते हैं। इस प्रकार से मृदा उपचारित हो जाती है। इसके अतिरिक्त कुछ जैविक कवकनाशी जैसे विभिन्न प्रकार के लाभकारी बेसिलस बैक्टीरिया, एक्टीनोमाइसिटस, ट्राइकोडर्मा तथा एसपर्जिलस आदि की संख्या में भी वृद्धि हो जाती है। इससे रोगकारकों, हानिकारक सूत्रकृमि एवं कीड़ों का जैविक नियंत्रण होता है।

बीज उपचार

बीज को रासायनिक अथवा जैविक विधि से उपचारित किया जा सकता है किन्तु जैविक विधि मृदा तथा मनुष्य के स्वास्थ्य के लिए लाभदायक है। इस विधि से बीज के उपचार हेतु ट्राइकोडर्मा 5–10 ग्राम / कि.ग्रा. बीज की दर से बीजोपचार करें या 20–25 ग्राम / वर्गमीटर क्षेत्र की दर से क्यारियों में मिलाकर फुहारे से हल्का पानी डालें। रासायनिक विधि में कार्बेन्डाजिम 2–5 ग्राम / कि.ग्रा. बीज से भी उपचार किया जा सकता है।

बीज की बुवाई

बीज की बुवाई कतारों में करें। इससे पौध लगभग एक समान दूरी पर रहने के कारण स्वस्थ व मजबूत होती है। इसमें सबसे पहले 5 सेंमी. की दूरी पर 0.5 सेंमी. गहरी कतार बनाते हैं। इन कतारों में बीज लगभग 1 सेंमी. की दूरी पर डालते हैं। बुवाई के बाद बीज को क्यारी में उपलब्ध मिट्टी से ही ढ़कें। इससे सौयीकृत/उपचारित क्यारियों में रोगजनक पुनः प्रवेश नहीं करेंगे।

प्रारम्भ के 5–6 दिनों तक क्यारियों में हल्की नमी बनाये रखें इसके लिए फुहारे से हल्की सिंचाई करें। ऐसा करने से बीज का अंकुरण अच्छी तरह होगा। अंकुरण के बाद ट्राइकोडर्मा 10 ग्राम/लीटर पानी में घोलकर अच्छी तरह से नर्सरी की क्यारी में डाल देवें।

पौधशाला को विपरीत परिस्थितियों जैसे सफेद मक्खी, वर्षा, तेज धूप, अधिक ठण्ड या अन्य बाहरी प्रकोप से बचाने के लिए पोलीथीन, मलमल कपड़ा, हरी छायादार जाली तथा नाइलोन नेट की संरचना का प्रयोग करें व आवश्यकता न होने पर हटा दें। इससे रोग व कीट मुक्त स्वस्थ पौध प्राप्त होती है। साथ ही बारिश की तेज बूँदों से भी पौध का बचाव होता है।

खरपतवार नियंत्रण

अंकुरण के बाद पौध की अच्छी बढ़वार के लिए खुरपी की सहायता से खरपतरवार निकालते रहना चाहिए। यदि क्यारियों में पौधे अधिक घने हों तो छोटी अवस्था में ही उखाड़ देना चाहिए। स्वस्थ पौध प्राप्त करने के लिए आवश्यक है कि पौधे से पौधे के बीच की दूरी 1–2 सेंमी. बनी रहे। यदि पौध ज्यादा घनी होगी तो पौध गलन बीमारी लगने की संभावना अधिक रहती है।

आवश्यकता पड़ने पर पौध गलन बीमारी की रोकथाम हेतु ब्लू कॉपर नामक दवा 2.0 ग्राम प्रति लीटर पानी की दर से घोल बनाकर पौधशाला की मिट्टी को तर करें।

कीट नियंत्रण

पर्ण सुरंगक कीट के संक्रमण से बचाव के लिए नीम की गिरी 40 ग्राम प्रति लीटर पानी में भिगोकर उसके घोल का छिड़काव करें।

पौध प्रत्यारोपण

बुवाई के करीब 18–22 दिन (5–6 पत्ती अवस्था) में पौध रोपाई के लिए तैयार हो जाती है। अधिक बड़ी पौध की रोपाई करने से उपज प्रभवित होती है। पौध उखाड़ने के 2–3 दिन पहले सिंचाई बंद कर देनी चाहिए। पौध उखाड़ने के बाद जड़ को इमिडाक्लोप्रिड 2.5 मि.ली. प्रति लीटर पानी के घोल में 3 घंटे उपचारित करने के बाद ट्राइकोडर्मा 10 ग्राम प्रति लीटर पानी के घोल में भिगोकर रोपाई करने से उपज अच्छी मिलती है।

समाप्त

खेती धन कौ नास, धनी न होवै पास।
खेती धन की आस, धनी जो होवै पास॥

करतार सिंह,* दया राम[1], मनोज चौधरी[2] एवं संतोष कुमार बिश्नोई[3]
भाकृअनुप–राष्ट्रीय पादप आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, क्षेत्रीय केन्द्र, जोधपुर–342003 (राजस्थान)
[1]कृषि विश्वविद्यालय, जोधपुर–342003 (राजस्थान)
[2]भाकृअनुप–राष्ट्रीय समेकित नाशीजीव प्रबंधन अनुसंधान केन्द्र, नई दिल्ली–110012
[3]भाकृअनुप–राष्ट्रीय पादप आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, क्षेत्रीय केन्द्र, राँची–834010 (झारखण्ड)
*E-mail: kartar1532@gmail.com

बाजरा फसल के प्रमुख कीट, रोग एवं प्रबंधन

बाजरा राजस्थान राज्य के पश्चिमी शुष्क एवं अर्द्धशुष्क क्षेत्रों की अधिकांश आबादी की एक प्रमुख खाद्यान्न फसल है। कुछ क्षेत्रों में यह सिंचित, अधिकांशतः वर्षा आधारित बारानी क्षेत्रों में बोई जाती है। इसके क्षेत्रफल, उत्पादन एवं उत्पादकता पर वर्षा का सीधा प्रभाव पड़ता है। खरीफ खाद्यान्न फसलों के 70 प्रतिशत क्षेत्र में बाजरे की खेती की जाती है जिससे खरीफ खाद्यान्न उत्पादन का 50 प्रतिशत भाग प्राप्त होता है। इस फसल पर कीड़े व बीमारियों के प्रकोप के कारण इसकी पैदावार पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। बाजरे की फसल में गुंदिया या चेपा, अरगट व जोगिया (हरित बाली) इत्यादि रोग तथा दीमक व सफेद लट का प्रकोप एक आम बात है। अतः बाजरे में कीट व बीमारियों की रोकथाम के लिए भूमि व बीज उपचार काफी लाभदायक पाया गया।

बाजरे के प्रमुख कीट एवं उनकी रोकथाम

सफेद लट – यह एक भूमिगत कीट है जिसकी लटें पौधों की जड़ें खाकर फसल को हानि पहुँचाती है।

दीमक – यह भी एक भूमि में पाया जाने वाला सर्वभक्षी कीट है, जो पौधों की जड़ें खाकर फसल को हानि पहुँचाते हैं।

भूमिगत कीटों की रोकथाम

- जहाँ सफेद लट का विशेष प्रकोप हो वहाँ इसकी रोकथाम हेतु एक किलोग्राम बीज में 3 किलोग्राम कार्बोफ्यूरॉन 3 प्रतिशत या क्यूनालफॉस 5 प्रतिशत कण मिलाकर बोयें तथा बुवाई से पूर्व भूमि को फोरेट 10–जी 25 किलोग्राम प्रति हैक्टर की दर से उपचारित करें।
- दीमक की रोकथाम हेतु बीजों को इमिडाक्लोप्रिड 3 मिली. प्रति किलोग्राम बीजदर से उपचारित करें या मिथाईल पेराथियॉन डस्ट 2 प्रतिशत या क्यूनालफॉस 1.5 प्रतिशत चूर्ण 25 किलोग्राम प्रति हैक्टर की दर से भूमि में बुवाई से पूर्व मिलावें।
- दीमक का प्रकोप कम करने के लिये खेत से सूखे डंठल आदि इकट्ठे कर हटा देना, कच्चा खाद प्रयोग नहीं करना आदि काफी सहायक होते हैं।
- खड़ी फसल में सफेद लट व दीमक का प्रकोप होने पर 4 लीटर क्लोरपायरीफॉस अथवा 2.5 लीटर फिप्रोनिल प्रति हैक्टर काफी सहायक होते हैं।
- चेफर बीटल, ब्लिस्टर बीटल एवं ईयर हैड बग कीटों का प्रकोप दिखाई देते ही क्यूनालफॉस 1.5 प्रतिशत या एमपी डस्ट 2 प्रतिशत चूर्ण 25 किलोग्राम प्रति हैक्टर की दर से भूरकाव करें।

बाजरा फसल के प्रमुख रोग एवं रोकथाम

हरित बाली रोग या जोगिया (ग्रीन ईयर) – इस रोग के मुख्य लक्षण पुष्पक्रम पर दिखाई देते हैं। रोग से प्रभावित पौधों की वृद्धि रूक जाती है, पत्तियाँ पीली पड़ जाती है, पत्तियों के नीचे भूरी सफेद फफूंद उभर आती है तथा सिट्टे निकलते समय दाने के स्थान पर हरे रंग के धागे जैसे रेशे उभर आते हैं और सम्पूर्ण बाली छोटी हरी पत्तियों जैसी सरंचनाओं का गुच्छा दिखाई देती है। अतः इस लक्षण के कारण इस रोग को 'हरी बाली' के नाम से जानते हैं।

रोकथाम

- इस रोग से बचाने हेतु बीज को 6 ग्राम एप्रोन एस.डी. 35 प्रति किलोग्राम बीज की दर से उपचारित करें।
- खडी फसल में इस रोग के लक्षण दिखाई देने खेतों में बुवाई के 21 दिन बाद दो किलोग्राम मैंकोजेब फफूंदनाशी दवा का छिडकाव करें।
- चरी बाजरे की फसल में से रोगग्रस्त पौधों को निकाल कर नष्ट करें।
- रोगरोधी किस्में आर.एच.बी. 30, डब्ल्यु सी.सी. 75, राज. 171 आदि बोयें।
- फसल चक्र भी इस रोग की रोकथाम में सहायक है।

गूंदिया या चेपा रोग (अरगट)

इस रोग के लक्षण बालियों पर पुष्पन के समय दिखाई देते हैं। सिटटों पर फूल आने के दौरान अगर हल्की वर्षा एवं बादल हो तो सिट्टों पर गोंद उभर आता है। सबसे पहली बाली की संक्रमित स्पाईकाओं से छोटी–छोटी बूंदों के रूप में शहद जैसे रंग का द्रव पदार्थ सिट्टों से रिसने लगता है, जो बाद में भूरे रंग के चिपचिपे द्रव के रूप में पूरे सिट्टे के उपर फैल जाता है। रोग से ग्रसित सिटे में दानों के स्थान पर छोटी–छोटी बैंगनी गहरे भूरे रंग की अनियमित संरचनाएं बन जाती है जिन्हें अरगट कहते हैं। रोगी बालियों पर रस निकलने के 10–15 दिनों बाद दानों के बीच में स्क्लेरोसियम फफूंद के स्पोर तुसों के बीच से निकलते हैं, इस प्रकार पूरे सिट्टे पर काला मुंह सा नजर आने लगता है।

रोकथाम

- अरगट रोग के नियंत्रण के लिए बीजों को 20 प्रतिशत नमक के घोल (1 किलोग्राम नमक/5 लीटर पानी) में 5 मिनट डुबोकर, निथारकर धोकर सुखा लें। उपरोक्त उपचार के बाद प्रति किलोग्राम बीज को 3 ग्राम थाइरम से उपचारित करें तथा अन्त में एजेटोबैक्टर 600 ग्राम (3 पैकेट) + पी.एस.बी. जीवाणु कल्चर 600 ग्राम (3 पैकेट) प्रति हैक्टर की दर से गुड के पानी में घोल बनाकर बीजोपचार करें।
- खडी फसल को अरगट रोग से बचाने हेतु लक्षण दिखाई देते ही या सिट्टे निकलते समय दो किलोग्राम मैंकोजेब फफूंदनाशी दवा का 3 दिन के अन्तर पर 2–3 छिडकाव करें।
- अरगट रोग ब्लिस्टर बीटल या चेपर बीटल द्वारा भी फैलता है, अतः सिट्टे आते समय इनकी रोकथाम हेतु कार्बोरिल डस्ट 5 प्रतिशत 25 किलोग्राम प्रति हैक्टर की दर से भूरकाव करें।
- रोगग्रस्त पौधों को उखाडकर नष्ट करें तथा जिस खेत में रोग लग गया हो उसमें अगले वर्ष बाजरे की फसल नहीं बोनी चाहिए।
- गर्मियों में गहरी जुताई करने से फफूंद के स्पोर नष्ट हो जाते हैं।

बाजरे का कंडवा (स्मट) रोग

यह एक मृदोढ़ रोग है जिसका प्रारंभ भूमि में पड़ी हुई कंड गैंदों से उत्पन्न होता है। रोग के लक्षण सिट्टों के दानों में कहीं–कहीं बिखरे हुए काले रंग के दिखाई देते हैं, परन्तु अधिकांश दाने रोगी होने से बच जाते हैं, कभी–कभी सिट्टों में केवल एक दाना ही रोगी होता है। रोगी दाने का व्यास सामान्य दाने से दो गुना होता है। रोगी सिट्टों से कंड भूमि में गिर जाते हैं और इनके चिपके स्पोर अकुंरण के समय स्वस्थ पौधों तक पहुँचकर रोग फैलाते हैं।

रोकथाम

- रोगी सिट्टों को उखाडकर नष्ट करें तथा स्वस्थ प्रमाणित बीजो का ही प्रयोग करें।
- ग्रीष्मकालीन गहरी जुताई, खेत की सफाई, फसलचक्र इत्यादि कृषण क्रियाएं अपनाएं।
- रोग के लक्षण दिखाई देते ही सर्वांगी कवकनाशी दवा–विटावेक्स या प्लान्टवेक्स इत्यादि के 0.25 प्रतिशत घोल (2.5 किलोग्राम दवा प्रति हैक्टर) के दो छिडकाव, पहला अधिकांश सिट्टों के निकलने पर तथा दुसरा 10 दिन बाद करना चाहिए।
- रोगरोधी किस्म आर.सी.बी. 2 बोनी चाहिए।

अतः किसानों से अनुरोध है कि खेत में कीट एवं बीमारियों का प्रकोप कम से कम हो, इसके लिए जरूरी है कि सदैव फसलचक्र अपनाएं, भूमि उपचार करें प्रमाणित बीज बोयें तथा बोने से पूर्व उचित कवकनाशी व कीटनाशी दवा से उपचारित करें तथा खडी फसल में रोग व कीडों के प्रकोप के लक्षण दिखाई देते ही उचित दवा का समय पर छिड़काव अवश्य करें।

समाप्त

खेती तौ थोरी करै, मेहनत करै सवाय।
राम चहै बा मनुस खों, टोटौ कभऊन आय॥

ओम प्रकाश,* अजय कुमार साह, अश्विनी दत्त पाठक, ब्रह्म प्रकाश एवं पल्लवी यादव[1]
भाकृअनुप–भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ–226002 (उत्तर प्रदेश)
[1]चंद्रभानु गुप्त कृषि स्नातकोत्तर महाविद्यालय, लखनऊ–226201 (उत्तर प्रदेश)
*E-mail: prakashdrom@yahoo.com

क्षारीय व जलभराव वाली मृदाओं में गन्ना उत्पादन

गन्ना एक प्रमुख नकदी फसल है, जिसका भारत की कृषि अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण स्थान है। सामान्यतः गन्ना भारत के सभी राज्यों में कम या अधिक क्षेत्रफल में उगाया जाता है। गन्ने की खेती भारत विभिन्न प्रकार की मृदा में की जा रही है। प्राकृतिक संसाधनों में मृदा का महत्वपूर्ण स्थान है। मृदा जैसे प्राकृतिक संसाधन के बिना मानव, वनस्पति एवं विभिन्न जीव–जंतुओं का जीवन असंभव है। अगर हम अपने देश की मृदा के बारे में चर्चा करें तो देश के अलग–अलग भागों में विभिन्न तरह की संरचना, समस्या व गुणों वाली मृदा पाई जाती है। जिन क्षेत्रों की मृदा विभिन्न कारणों से समस्याग्रस्त है, उन समस्याग्रस्त मृदाओं में गन्ने की खेती करना एक मुश्किल कार्य होता है। प्रस्तुत लेख में गन्ने की अच्छी उपज प्राप्त करने हेतु वैज्ञानिक संस्तुतियों एवं तकनीकों के बारे में वर्णन है जो गन्ने की उपज बढाने में सहायक सिद्ध होगी।

भारत में मृदा की प्रमुख समस्याएं

भारत में पायी जाने वाली मृदा के उर्वरता स्तर, संरचना तथा भौतिक, रसायनिक एवं जैविक गुणों में भिन्नता पाई जाती है। कुछ क्षेत्रों की मृदा में विभिन्न प्रकार की समस्याएं पाई जाती है। जिनमें लवणता, क्षारीयता, जलमग्नता, अम्लीयता, मृदा क्षरण, तथा कम उर्वरता आदि प्रमुख हैं। इन मृदाओं में गन्ने की खेती करने पर गन्ने की उपज तथा बढ़वार विपरीत रूप से प्रभावित होती है।

समस्याग्रस्त मृदा में गन्ना की खेती हेतु वैज्ञानिक संस्तुतियां

समस्याग्रस्त मृदा में गन्ने की फसल से अधिक उपज एवं लाभ प्राप्त करने हेतु वैज्ञानिक तकनीक एवं सस्य क्रियाओं के समुचित उपयोग से इस लक्ष्य को किसान प्राप्त कर सकते हैं। समस्याग्रस्त मृदा में गन्ने की खेती हेतु वैज्ञानिक संस्तुतियों की चर्चा निम्नवत है–

लवण सहनशील प्रजातियों का चयन : लवण प्रभावित मृदा में गन्ने की अधिक उपज हेतु लवण सहनशील प्रजातियों का चुनाव मुख्य होता है। विभिन्न क्षेत्रों की लवण प्रभावित मृदाओं के लिए संस्तुत प्रजातियाँ निम्नानुसार हैं।

उपोष्ण क्षेत्रों की लवण प्रभावित मृदा हेतु : कोशा 767, कोशा 92263, कोशा 93278, कोशा 94257, कोशा 94270, कोशा 95222, कोशा 95255, यू.पी. 9529, यू.पी. 9530 तथा कोशा 96436 आदि प्रमुख प्रजातियाँ हैं।

उष्ण कटिबंधीय क्षेत्रों की लवण प्रभावित मृदा हेतु : को. 95003, को. 93005, को. 97008, को. 85019, को. 99004, को. 2001–13, को. 94012, को. 2000–10, सी. 2001–15 तथा को. 97001।

जलभराव वाली समस्याग्रस्त मृदा हेतु संस्तुत प्रजातियां

जहाँ जलभराव या बाढ़ की समस्या हो उस दशा में निम्न संस्तुत प्रजातियों का चयन करना चाहिए:

उपोष्ण क्षेत्रों की जलभराव वाली मृदा हेतु : यू.पी. 9529, यू.पी. 9530 तथा कोसे 96436 (जलपरी) एवं कोलख 94184 (बीरेंद्र)।

उष्ण कटिबंधीय क्षेत्रों की जलभराव वाली मृदा हेतु : को. 8231, को. 8232, को. 8145, कोसी 86071, कोसी 776, को. 8371, को. 99006, 93 ए 4, 93 ए 11, 93 ए 145 तथा 93 ए 21।

समस्याग्रस्त मृदा हेतु सस्य क्रिया संबंधी सुझाव

समस्याग्रस्त मृदा से भरपूर गन्ना उत्पादन हेतु संसाधनों का समुचित उपयोग, वैज्ञानिक एवं सस्य घटकों संबंधी सस्तुतियों को समय–समय पर अपनाना गन्नों की उपज बढ़ाने में सहायक होते हैं। प्रमुख सस्य संबंधी सुझाव निम्नवत हैं:

- मृदा की नमी के ह्रास को रोकने के लिए यह आवश्यक है कि समस्याग्रस्त मृदा में कार्बनिक/जैविक खादों का ही प्रयोग करना चाहिए।
- पाइराइट्स को लवणीय–क्षारीय मृदा में सुधारक के रूप में प्रयोग करना चाहिए, जिससे मृदा में फॉस्फोरस की उपलब्धता बढ़ जाने से फसल की उपज बढाने में सहायता मिलती है।
- गन्ने की शरदकालीन बुवाई को प्राथमिकता देना चाहिए।
- जलभराव वाली समस्याग्रस्त मृदा में गन्ने की बुवाई नाली विधि से करनी चाहिए।
- जलभराव वाली समस्याग्रस्त मृदा में 2.5 से 3.0 प्रतिशत यूरिया के घोल का गन्ने की फसल पर पर्णीय छिड़काव करना चाहिए।
- मृदा परीक्षण के परिणामों के आधार पर एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन एवं मृदा सुधारकों का प्रयोग करना चाहिए जिससे मृदा में उर्वरकों का आवश्यकता से अधिक प्रयोग न करना पड़े।
- जलभराव वाली मृदा में उगाई गयी गन्ने की फसल की कटाई में देरी नहीं करनी चाहिए।
- गन्ने की फसल के साथ अन्य लवणरोधी फसलों को अंतःफसल/सहफसल के रूप में शामिल करना चाहिए।
- जलभराव वाली मृदा में जल निकास हेतु उचित प्रबंधन करना चाहिए।
- क्षारीय मृदा में हरी खाद हेतु ढेंचा की फसल उगानी चाहिए।
- अधिक लवणयुक्त सिंचाई जल का प्रयोग गन्ने की फसल में नहीं करना चाहिए।
- गोबर की अच्छी तरह से सड़ी खाद की लगभग 25–40 टन/हैक्टर मात्रा को गन्ने की बुवाई से 15–20 दिन पहले खेत में डालकर अच्छी तरह मिला देना चाहिए।
- सल्फीटेशन प्रेसमड की लगभग 5–10 टन/हैक्टर. मात्रा को गन्ने की बुवाई से 15–20 दिन पहले खेत में डालकर अच्छी तरह मिला देना चाहिए।
- क्षारीय मृदा में गन्ना बोने से पहले आवश्यकता के अनुसार जिप्सम की मात्रा का प्रयोग करना चाहिए।

लवणीय–क्षारीय मृदाओं में गन्ना उत्पादन हेतु रासायनिक उर्वरकों की संस्तुत मात्रा

अधिक उपज व गुणवत्तायुक्त फसल उत्पादन में उर्वरकों के समुचित उपयोग की भी महत्वपूर्ण भूमिका होती है। इस प्रकार की समस्याग्रस्त मृदाओं में पोषक तत्वों का स्तर निम्न श्रेणी में होता है। विभिन्न शोधों एवं परीक्षणों से ज्ञात हुआ है कि गन्ना फसल की अच्छी बढ़वार एवं से अधिक उत्पादन प्राप्त करने हेतु फसल की विभिन्न अवस्थाओं में पोषक तत्वों की अलग–अलग मात्रा की आवश्यकता होती है जिनमें सबसे अधिक आवश्यकता नाइट्रोजन की होती है।

- समस्याग्रस्त क्षारीय मृदा में प्रायः जस्ते की कमी पाई जाती है। इस प्रकार की मृदा में 20–25 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर जिंक सल्फेट का प्रयोग करना चाहिए जो गन्ना उपज बढ़ाने में सहायक होता है।
- मृदा सुधारक के रूप में गन्ना उगाने वाली मृदा में 12–15 टन प्रति हैक्टर जिप्सम का प्रयोग करना उपज वृद्धि में सहायक होता है।
- मृदा परीक्षण के आधार पर रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग करना चाहिए।

समस्याग्रस्त मृदा में सस्य क्रियाओं का उचित प्रबंधन

समस्याग्रस्त मृदा में गन्ने की खेती हेतु समय–समय पर मृदा प्रबंध व सस्य क्रियाओं का विशेष योगदान होता है जिसमें खेत की तैयारी, गन्ना बीज दर, बुवाई का समय, सहफसली खेती, कर्षण क्रियाएँ व कीटों व रोगों से कीटनाशी रसायनों/जैव नियंत्रकों के प्रयोग द्वारा फसल सुरक्षा आदि प्रमुख हैं।

किसान समस्याग्रस्त मृदा में उपरोक्त संस्तुतियों, तकनीकों एवं सुझावों के आधार पर गन्ने की खेती करेंगे तो अवश्य ही गन्ने की फसल से भरपूर उपज एवं गुणवततायुक्त गन्ना उत्पाद प्राप्त कर अपनी आय में सार्थक वृद्धि के साथ आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ बना सकते हैं।

समाप्त

> असाड़ सावन करी गमतरी, कातिक खाये, पुआ।
> मांय बहिनियां पूछन लागे, कातिक कित्ता हुआ॥

रूमी रावल* एवं कृष्णा रोलानियाँ
कीट विज्ञान विभाग, चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार–125 004 (हरियाणा)
*E-mail: roomi.rawal78@gmail.com

गोभी वर्गीय सब्जियों के कीट तथा उनकी रोकथाम

सर्दी में गोभी वर्गीय सब्जियों (फूल गोभी, बन्द गोभी व गांठ गोभी) का बहुत महत्व है। क्योंकि सर्दी में सब्जियों के आधे क्षेत्रफल में यही सब्जियां उगाई जाती है। इन सब्जियों को कैल्शियम, मैग्नीशियम, फॉस्फोरस, विटामिन ए एवं सी इत्यादि का अच्छा स्त्रोत माना जाता है। लेकिन इनके उत्पादन में कई प्रकार की अड़चनें जैसे कीट व बीमारियां आदि आ जाती हैं। उत्पादन के साथ–साथ कीट भी इन सब्जियों की गुणवत्ता को प्रभावित करते हैं। इसलिए यदि समय पर कीटों को नियंत्रित किया जाए तो इनसे होने वाले नुकसान को कम किया जा सकता है। इस लेख में गोभी वर्गीय सब्जियों को नुकसान पहुँचाने वाले कीट व इनके प्रबंधन के बारे में बताया गया है।

हीरक पृष्ठ पतंगा (डायमंड बैक मोथ): दुनियाभर में इस कीट से गोभी वर्गीय सब्जियों को बहुत अधिक नुकसान हो रहा है। यह हरे रंग का छोटा कीट है जो जरा–सा छूने से एकदम से उछल पड़ता है। इसका वयस्क भूरे रंग का होता है और जब यह बैठता है तो इसके पृष्ठ भाग पर 3 हीरे की तरह चमकीले चिन्ह दिखाई देते है। इसी कारण से इसे हीरक पृष्ठ पतंगा कहते है। नुकसान सूण्डियों के द्वारा किया जाता है। छोटी सूण्डियां पत्तियों को खुरच–खुरच कर खाती है तथा सिर्फ सफेद झिल्ली छोड़ देती है। बड़ी सूण्डियां गोल सुराख बनाती हैं। अधिक प्रकोप होने पर छोटे पौधे मर जाते हैं। इसका प्रकोप अगस्त माह से शुरू हो जाता है।

रोकथाम – 400 ग्राम बेसीलस थूरिनजिएंसिस (बायोआस्प) या 300 मि.ली. डायजिनान 20 ई.सी. को 200–250 लीटर पानी में घोलकर प्रति एकड़ की दर से छिड़काव करें।

– 400 मि.ली. मैलाथियान 50 ई.सी. या 60 मि.ली. डाईक्लोरफास 76 ई.सी. को भी 200–250 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ की दर से छिड़काव करें।

तम्बाकू की सूण्डी (टोबेको केटरपिलर): इस कीट की सुण्डियाँ प्रारंभिक अवस्था में एक जगह इकट्ठी रहती है और पत्तों को खाती है। बड़ी होने पर सूण्डियां सारे खेत में फैल जाती हैं। ये पत्तों को गोल–गोल काटकर खाती है। सूण्डी पीले–भूरे रंग की होती है जो हरी से बैंगनी चमक देती है। इसका प्रकोप सितम्बर

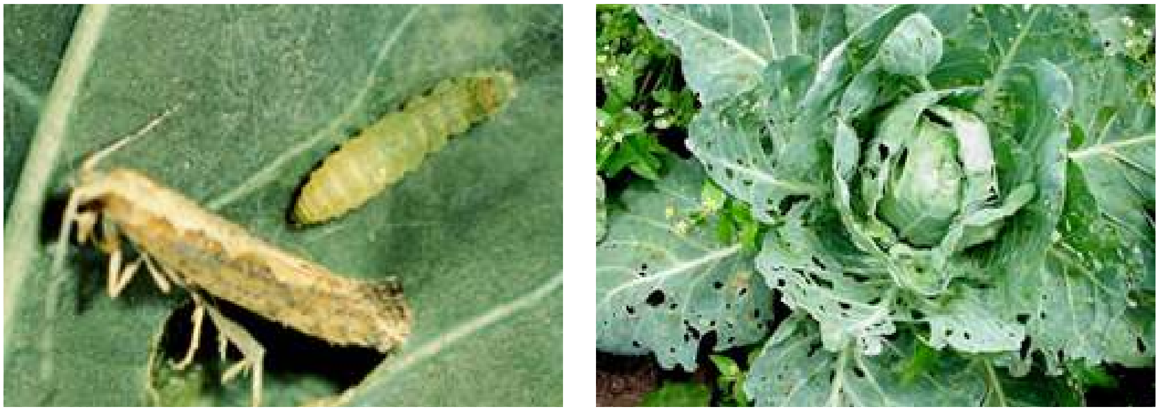

हीरक पृष्ठ पतंगा और इसके नुकसान

तम्बाकू की सूण्डी

से नवम्बर तक होता है। इसके पतंगे गहरे भूरे रंग के होते है। ये पतंगे रात को बहुत सक्रिय हो जाते हैं।

बन्द गोभी की सूण्डी (केबेज केटरपिलर): यह मध्यम आकार की पीलापन लिए हुए सफेद रंग की होती है। फसल को नुकसान सूण्डियों की वजह से होता है। इस कीट की पूर्ण विकसित सूण्डी 3–4 सेंमी. लम्बी, मखमली गहरे हरे रंग की होती है तथा शरीर पर धब्बे, पीली धारियां और सफेद बाल होते हैं। छोटी सूण्डियां झुंड में पत्तों को खाती है तथा फूल में भी चली जाती है। बड़ी सूण्डियां पत्तों को छलनी कर देती है। अधिक प्रकोप होने पर पत्तियों की सिर्फ शिराएं रह जाती है। इसका प्रकोप सितम्बर से अप्रैल तक होता है।

सूण्डी वयस्क

चेपा (एफीड) : ये छोटे आकार के हरे पीले पंखदार व पंखविहीन कीट होते हैं। इस कीट के शिशु व प्रौढ़ दोनों ही पत्तियों से रस चूसते हैं, जिससे पत्तियां पीली पड़ जाती हैं और पौधो की बढ़वार रूक जाती है। ये अपने शरीर से मधुरस छोड़ते हैं जिस पर काली फफूंद उग जाती है।

कुबड़ा कीट: यह बहुभक्षी कीट है। यह कीट चलते समय लूप (कूबड़) बनाकर चलता है। इस कीट की सूण्डियां हरे रंग की होती हैं एवं शरीर पर सफेद रंग की धारियां होती है। ये सूण्डियां पत्तों को खा जाती है। परिणामस्वरूप केवल शिराएं ही रह जाती हैं।

रोकथाम : उपरोक्त सभी कीटों (तम्बाकू की सुण्डी, बन्द गोभी की सुण्डी, चेपा तथा कुबड़ा कीट) की रोकथाम के लिये 400 मि.ली. मैलाथियान 50 ई.सी. को 200–250 लीटर पानी में घोलकर प्रति एकड़ की दर से छिड़काव करें। दस दिन के अन्तराल पर अगला छिड़काव करें।

कुबड़ा कीट

समाप्त

मनीष कुमार, अंशुमान सिंह, राकेश बनियाल, राजकुमार, राम किशोर फगोड़िया, शिवलाल एवं राजेंद्र कुमार यादव
भाकृअनुप–केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, करनाल (हरियाणा)
[1]भाकृअनुप–केन्द्रीय शीतोष्ण बागवानी संस्थान, श्रीनगर (जम्मु व कश्मीर)
E-mail: manish.rrm@gmail.com

लवण प्रभावित मृदाओं में जैतून की खेती की संभावनाएं

जैतून (ओलिया यूरोपिया एल.) एक वृक्ष व तिलहन फसल है, जो उपोष्णकटिबंधीय जलवायु के लिए उपयुक्त है। जैतून के फलों का प्रयोग मुख्यतः खाद्य तेल निकालने के लिए किया जाता है। विश्व की लगभग 92 प्रतिशत उपज खाद्य तेल प्राप्त करने के लिए प्रयोग होती हैं जिनमें औषधीय गुण भी पाये जाते हैं। इसके फल का उपयोग सलाद, सूप, अचार आदि में भी होता है। जैतून तेल का इस्तेमाल खाद्य तेल के अलावा सौंदर्य प्रसाधन, दवाईयों, साबुन और पारंपरिक तेल ईंधन के रूप में होता है। जैतून तेल पोली असंतृप्त वसीय अम्ल (पीयूएफए) का एक प्रचुर स्रोत है जो कोलेस्ट्रोल से बिल्कुल मुक्त है तथा हृदय के लिए अच्छा माना जाता है। इसके कई स्वास्थ्य लाभों की वजह से जैतून का तेल लोकप्रिय है, मुख्यतः उच्च रक्तचाप से ग्रस्त लोगों एवं कोरोनरी रोग के लिए अति उपयोगी है। जैतून के तेल से स्वास्थ्य पर होने वाले संभावित सकारात्मक प्रभावों को लेकर भारत में जागरूकता बढ़ रही है। इससे उच्च–निम्न रक्तचाप, दिल की बीमारियों के खतरे और कैंसर के कुछ खास प्रकारों से बचाव होता है।

जैतून की खेती मुख्यतः भूमध्यसागर के आसपास के देशों स्पेन, इटली, मिस्र, तुर्की, पुर्तगाल, टयूनिशिया, मोरक्को, सीरिया, जोर्डन तथा इजरायल में हो रही है। विश्व में जैतून तेल का उत्पादन 22 लाख मिलियन टन है, और यूरोपीय संघ इसका 75 प्रतिशत उत्पादन करता है। यूरोपीय संघ के अंतर्गत, स्पेन कुल उत्पादन के 50 प्रतिशत के साथ पहले स्थान पर है, इसके बाद इटली (24 प्रतिशत) और ग्रीस (22 प्रतिशत) है।

मृदा एवं जलवायु

जैतून की खेती गर्म, शीतोष्ण और उपोष्ण क्षेत्रों में की जा सकती है। यह समुद्र तल से 800–1400 मीटर तक की ऊँचाई पर उगाया जा सकता है। विभिन्न जलवायु कारकों मे तापमान मुख्य कारक है जो जैतून की खेती को प्रभावित करता है। जैतून के पौधों को 7–35° सेल्सियस तापमान तक की आवश्यकता होती है, परन्तु औसतन 15–20°#सेल्सियस तापमान सर्वाधिक उपयुक्त माना जाता है। जैतून की खेती के लिए सर्दियों में पर्याप्त ठंड तथा गर्मियों में शुष्क मौसम उपयुक्त रहता है। गर्मी की लम्बी अवधि व मौसम में नमी की कमी से फूल और फल झड़ने की समस्या उत्पन्न होती है। सर्दियों में 7–20°#सेल्सियस तापमान सुप्तावस्था तोड़ने के लिए आवश्यक है। जैतून के पेड़ में फल लगने के लिए शीत तापमान की आवश्यकता होती है, हालांकि 12°#सेल्सियस, कम से कम 10 सप्ताह तक प्रचुर मात्रा में फूल आने के लिए आवश्यक है। जैतून के फल पकने के लिए गर्मियों में लंबी अवधि तक उच्च तापमान की जरूरत होती है। मानसून सत्र में अधिक आर्द्रता होने के कारण पौधों को अधिक देखभाल की आवश्यकता होती है।

जैतून की खेती विभिन्न प्रकार की मिट्टियों में संभव है। गहरी, उपजाऊ एवं अच्छी जलनिकास वाली भूमि इसकी खेती के लिए सर्वोतम मानी जाती है। इसकी खेती व्यापक श्रेणी की मिट्टी जैसे चिकनी एवं भारी मिट्टी तथा हल्की एवं रेतीली मिट्टी के अनुकूल है। चिकनी एवं भारी मिट्टी वाले क्षेत्रों में 2 फीट ऊँचाई एवं 2 फीट चौड़ाई की मेड़ बनाकर पौधों का रोपण करना लाभदायक होता है।

भारत में मृदा लवणता की समस्या

भारत में कुल 6.74 मिलियन हैक्टर भूमि लवणग्रस्त है तथा ऐसा अनुमान लगाया गया है कि वर्ष 2050 तक लवण प्रभावित क्षेत्र 162 लाख हैक्टर तक बढ़ सकता है। इन लवणग्रस्त भूमियों में फसलोत्पादन प्रबंधन एक चुनौतीपूर्ण कार्य है। जब सिंचाई में उपयोग किया जाने वाला जल भी लवणीय हो तो इन भूमियों में खेती करना और भी कठिन हो जाता है। विगत कुछ वर्षों में जलवायु परिवर्तन से भी खेती काफी प्रभावित हुई है। वर्षा के दिनों की संख्या घटी है जबकि वर्षा सघनता बढ़ी है। जलवायु अनिश्चितता, मिट्टी व पानी की लवणता एवं कमजोर सामाजिक–आर्थिक दशा जैसे कारणों से कृषि आय लगातार घट रही है। अतः किसानों को पारंपरिक खेती से बेहतर, किफायती और अधिक आमदनी देने वाले विकल्प उपलब्ध कराने की आवश्यकता है। इस लेख में लवणग्रस्त भूमियों में जैतून की व्यवसायिक खेती की संभावना पर प्रकाश डाला गया है।

जैतून का पेड़ सदियों से भूमध्य क्षेत्र में असिंचित सीमांत एवं बंजर भूमि पर लगाया जाता है। इसमें सूखा, क्षारीयता और लवणता सहन करने की पर्याप्त क्षमता मौजूद है। जैतून में लवण सहिष्णुता के लिए उत्तरदायी कारकों में निम्नलिखित गुण सम्मिलित हैः–

- पौधों को पानी की कम आवश्यकता होती है।
- पेड़ सोडियम एवं क्लोराइड आयनों का बहिष्करण करता है।
- पत्तियों में एमीनो एसिड प्रोलाइन का अधिक संचय करता है।
- जड़ों द्वारा नमक के अवशोषण एवं हस्तांतरण को रोकता है।

जैतून की चार किस्में (पेंडोलिनो, असकोलानो, कोराटीना और फ्रंटोइयो) का मूल्यांकन इनकी तेल उपज क्षमता के लिए हिमाचल प्रदेश के मंडी और चंबा क्षेत्रों में किया गया और पाया गया कि इन किस्मों में तेल की गुणवत्ता निर्धारित वैश्विक मानकों के समतुल्य थी। ओलिया फेर्रुगिनिया रोयल, जिसे आम तौर पर भारतीय जैतून के नाम से जाना जाता है, कश्मीर से हिमालय में कुमाऊं तक 2400 मीटर की ऊँचाई तक व्यापक रूप से उगता है। इसके फल में तेल की मात्रा बीज की तुलना में काफी अधिक होती है। फल और बीज में तेल का अंश क्रमशः 20–27 और 7.5–12.5 प्रतिशत पाया जाता है। यद्यपि विभिन्न अनुसंधानों से यह स्पष्ट है कि जैतून में पर्याप्त लवण सहिष्णुता पायी जाती है, परन्तु भारत में व्यवसायिक खेती के लिए संस्तुत प्रजातियों में लवण व क्षार सहनशीलता का मूल्यांकन आवश्यक है।

तालिका 1ः भारत में उपलब्ध जैतून की कुछ लवण सहिष्णु किस्में

प्रतिरोध क्षमता	किस्में
सहनशील	बार्निया, कालामाता, फ्रंटोइयो, अर्बेक्यूएना, पिकुअल
मध्यम सहनशील	कोरोनिकी, कोराटीना

जैतून की नर्सरी

- कृषकों को उच्च गुणवत्तायुक्त जैतून के पौधे उपलब्ध कराने हेतु अंतरर्राष्ट्रीय मानकों की अत्याधुनिक नर्सरी की स्थापना राजस्थान सरकार द्वारा विकसित किये गये उत्कृष्टता केन्द्र, बस्सी जिला जयपुर में की गई है।
- नर्सरी में जैतून की 7 विभिन्न किस्में क्रमशः बार्निया, अर्बेक्यूएना, कोरटीना, पिचोलाइन, पिकुअल, कोरोनिकी और फ्रंटोइओ के पौधे उपलब्ध कराए जा रहे हैं।
- जैतून के नए पौधे कलम द्वारा प्राप्त किए जाते हैं। प्रौढ़ डालियों के 6 इंच के टुकड़े काट कर अक्टूबर या फरवरी में कटिंग लगाते हैं, परन्तु कलम काटने एवं लगाने के समय का निर्धारण उनके किस्म, क्षेत्रों व वातावरण पर भी निर्भर करता है।
- 30–50 सेंमी. की ऊंचाई होने पर पौधे खेत में रोपण योग्य हो जाते हैं।

गुणवत्ता वाले जैतून के पौधे राजस्थान ओलिव कल्टीवेशन लिमिटेड बस्सी जयपुर, भाकृअनुप–केन्द्रीय शीतोष्ण बागवानी संस्थान श्रीनगर, यशवंत सिंह परमार बागवानी एवं वानिकी विश्वविद्यालय सोलन, हिमाचल प्रदेश इत्यादि से प्राप्त कर सकते हैं। राजस्थान सरकार द्वारा वित्तीय सहायता प्राप्त एजेंसी "राजस्थान ओलिव कल्टीवेशन लिमिटेड जयपुर" ने इस प्रोजेक्ट को विस्तार देने के लिए राज्य में प्रतिवर्ष 20 लाख जैतून के पौधे तैयार करने की क्षमता वाली हाईटेक विश्वस्तरीय जैतून नर्सरी संचालित की है।

तालिका 2: राजस्थान ओलिव कल्टीवेशन लिमिटेड, जयपुर की हाईटेक पौधशालाएं

क्रम संख्या	फार्म का नाम
1	ढिंढोल, बस्सी, जयपुर
2	बास बिसना, झुंझूनू
3	लूणकरणसर, बीकानेर
4	बरेरा, श्रीगंगानगर
5	बाकलिया, नागौर
6	सांथु, जालौर
7	तिनकीरुडी, अलवर

परागण प्रबंधन

जैतून में परागण हवा द्वारा होता है तथा अधिकांश किस्में स्व–परागित स्वभाव की होती है परन्तु कुछ किस्मों को आत्म–बंध्यव बांझपन स्वभाव के कारण परागण हेतु परागणक किस्म की नितांत आवश्यकता होती है, जो फल लगना सुनिश्चित करती है। बड़े पैमाने पर इटली में पेंडोलिनो किस्म का जैतून की अन्य किस्मों परागण के रूप में उपयोग किया जाता है। इसलिए व्यवसायिक खेती हेतु जैतून की परागणकर्ता किस्म की पहचान भाकृअनुप–केन्द्रीय शीतोष्ण बागवानी संस्थान, श्रीनगर द्वारा की गयी है। जैसे फ्रंटोइओ के लिये पिकोलिनएवं लेस्सिनो, पिकोलिन के लिए लेस्सिनो, लेस्सिनो के लिए पिकोलिनएवं पेंडोलिनो,कोराटीना के लिए फ्रंटोइओ एवं पिकोलिन परागणकर्ता किस्म की भूमिका निभाता है। जैतून के एक व्यवसायिक बाग में मुख्य किस्म के साथ 10 प्रतिशत परागणकर्ता किस्म अवश्य लगानी चाहिये।

भारतीय परिदृश्य और वैश्विक संग्रह

देश में जैतून तेल की कीमत 500–850 रुपये प्रति किलोग्राम है। अभी देश में जैतून तेल का आयात विदेशों मुख्य रूप से इटली, स्पेन और इजरायल से किया जाता है। वाणिज्य मंत्रालय, भारत सरकार से प्राप्त आंकड़ों के अनुसार, जैतून तेल का आयात वर्ष 2012–13 में 14000 मीट्रिक टन था जो वर्ष 2020 तक 25000 मीट्रिक टन एवं वर्ष 2025 तक 42000 मीट्रिक टन तक पहुँचने की संभावना है। कुछ वर्षों पूर्व राष्ट्रीय पादप आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो, नई दिल्ली द्वारा जैतून की 108 किस्मों का परीक्षण किया गया परन्तु कोई खास सफलता प्राप्त नहीं हुई। परंतु हाल ही में कोराटिना, फ्रंटोइओ और बुटील्लोन, डोल 0090, फ्रंटोइओ, ग्रोस्सा डि स्पेगाना, लेक्किनो, मिशन लीवा और पिकानो आदि किस्मों ने अच्छा प्रदर्शन किया है। भारत में जैतून की खेती अभी भी अपनी प्रारंभिक अवस्था में है और कुछ राज्यों जैसे जम्मू और कश्मीर, हिमाचल प्रदेश, उत्तराखंड और राजस्थान के कुछ क्षेत्रों तक ही सीमित है। भारत में उगाई जाने वाली किस्में मुख्य रूप से इजराइल, मिस्र, इटली और संयुक्त राज्य अमेरिका से है।

भाकृअनुप–केन्द्रीय शीतोष्ण बागवानी संस्थान, श्रीनगर में जैतुन पर शोध कार्य वर्ष 2008 में शुरू कर जैतून की कुल 18 प्रजातियों का मूल्यांकन किया गया जिनका मिस्र, यूसी–डेविस, केलिफोर्निया और रामबन (जम्मू और कश्मीर) से संग्रह किया गया था। शोध के प्रारंभिक परिणाम बताते हैं कि कोराटिना, पेंडोलिनो, मेस्सेनिस, फ्रंटोइओ, लेस्सिनो, सिप्रेस्सिनो और पिचोलिन समशीतोष्ण क्षेत्र में अन्य जीनोटाइप से बेहतर प्रदर्शन करते हैं। औसत फल उपज 10–28 कि.ग्रा. प्रति पौधा (8–9 वर्ष आयु तक) और औसत तेल 15–20 प्रतिशत तक पायी गयी जो समशीतोष्ण जलवायु में जैतून की खेती के लिए प्रोत्साहित करती है।

राजस्थान सरकार द्वारा जैतून की उत्तम प्रजातियों को विभिन्न देशों जैसे इटली, स्पेन व इजराइल से मंगाकर बड़े पैमाने पर प्रक्षेत्र मूल्यांकन व संवर्धन किया जा रहा है। राज्य में विदेशों से आयात की गई जैतून की सात किस्में, बार्निया (उत्पत्तिः इजराइल, प्रयोजनः तेल), अर्बेक्यूएना (उत्पत्तिः स्पेन, प्रयोजनः तेल), कोराटीना (उत्पत्तिः इटली, प्रयोजनः तेल),पिकोलिन(उत्पत्तिः फ्रांस, प्रयोजनः फल व तेल), पिकुअल (उत्पत्तिः स्पेन, प्रयोजनः तेल), कोरोनिकी (उत्पत्तिः ग्रीस, प्रयोजनः तेल) और फ्रंटोइओ (उत्पत्तिः टस्कनी व इटली, प्रयोजनः तेल) आदि हैं। जैतून तेल की उपलब्धता में भारत को आत्मनिर्भर बनाने के लिए राजस्थान सरकार द्वारा विदेशों से मंगाए जैतून के 1 लाख पौधों को परीक्षण के तौर पर सरकारी जमीन में रोपा गया है। राजस्थान सरकार द्वारा जैतून की खेती को प्रोत्साहन देने के लिए किसानों को अनुदान व अन्य सुविधाएं भी देने का प्रस्ताव रखा है। इसके तहत जैतून की खेती के लिए किसानों को बगीचों की स्थापना के लिए पौधों की कीमत का 80 प्रतिशत या अधिकतम राशि 48 हजार रुपये प्रति हैक्टर का अनुदान दिया जाता है। इसके अलावा जैतून के बागों के रखरखाव के लिए उवर्रक, पौध संरक्षण रसायन आदि पर 3200 रुपये प्रति हैक्टर प्रति वर्ष की दर से चार वर्षों तक अनुदान दिया जाता है। प्रत्येक किसान को अधिकतम 10 हैक्टर क्षेत्रफल के लिए ही अनुदान दिया जाता है। भारत सरकार भी राजस्थान में जैतून की खेती को प्रोत्साहन देने के लिए सहयोग कर रही है और नेशनल मिशन ऑन ऑइल सीडस एण्ड ऑइल पाम (एनएमओओपी) योजना के तहत जैतून की खेती के लक्ष्य निर्धारित किए गए हैं। अतःदेश के

विभिन्न कृषि–जलवायु क्षेत्रों में बड़े पैमाने पर खेती के लिए जैतून की किस्मों का वृहद स्तर पर परीक्षण आवश्यक है। कुछ जंगली किस्में जैविक और अजैविक तनावों के प्रति अधिक प्रतिरोधक क्षमता रखती है। ऐसी दो जंगली प्रजातियों (ओलिया अफ्रीकाना और ओलिया ओलेस्टर) भारत में पायी जाती है जिनका प्रयोग जैतून सुधार कार्यक्रमों में किया जा सकता है।

तालिका 3: भारत में आयात की गई जैतून की महत्वपूर्ण किस्में

किस्में	उत्पत्ति	महत्वपूर्ण विशेषताएं
बार्निया	इजराइल	रोग–प्रतिरोधी, उच्च पैदावार, तेल और टेबल जैतून दोनों के लिए इस्तेमाल, तेल में हरी पत्ती का सुगंध।
अर्बेक्यूएना	स्पेन	प्रयोजनः तेल, फल छोटा, गोलाकार एवं शुरुआती दौर में परिपक्व होता है, स्व–उपजाऊ, ओलीक एसिड और पोलीफेनोल अपेक्षाकृत कम मात्रा में होती है।
कोराटीना	इटली	प्रयोजनः तेल, फल बड़े और अंडाकार होता है, समान रूप से देर में पकता है,परागणक की जरूरत है, पोलीफेनोल के प्रचुर मात्रा मेंउच्च गुणवत्तायुक्त तेल।
पिकोलिन	फ्रांस	प्रयोजनः दोनों (तेल व फल), फल हरा, मध्यम आकार का और लम्बा होता है, स्वाद हल्का और स्वादिष्ट, आंशिक रूप से स्व–उपजाऊ और एक परागणक की आवश्यकता होती है।
पिकुअल	स्पेन	प्रयोजनः तेल, स्व–उपजाऊ,स्पेन में सबसे अधिक व्यापक रूप से खेती की जाने वाली जैतून, स्पेन के उत्पादन का लगभग 50 प्रतिशत एवं विश्व के उत्पादन का लगभग 20 प्रतिशत, स्वाद में मीठी, प्रचुर मात्रा में ओलिक एसिड और विटामिन–ई पाया जाता है।
कोरोनिकी	ग्रीस	प्रयोजनः तेल, छोटा जैतून, स्व–परागण, असाधारण गुणवत्ता वाली, ज्यादा मात्रा में जैतून का तेल प्राप्त होता है।
फ्रोंटोयो	टस्कनी, इटली	प्रयोजनः तेल, आंशिक रूप से स्व–उपजाऊ, फल मध्यम आकार के अंडाकार होते हैं, ठंड के प्रति संवेदनशील है, उच्च गुणवत्ता वाले तेल का उत्पादन किया जाता है।
लेस्सिनो	इटली	छोटे से मध्यम फल, हल्का मीठा स्वाद है और इसे एक परागणक की आवश्यकता होती है।
कालामाता	ग्रीस	फल बड़े आकार, चिकना और मांस स्वाद वाले काले रंग का जैतून, टेबल जैतून के लिए इस्तेमाल, तेल का सिरका के रूप में उपयोग होता है।
ओलिया फेर्रुगिनेया		भारतीय (जंगली) तेल की मात्रा बीज की तुलना में फल में काफी अधिक, तेल का अंश 20.27प्रतिशत(फल) और 7.5–12.5प्रतिशत (बीज) पाया गया, तेल में मोनोअनसैचुरेटेड ओलिक एसिड प्रमुख रूप से है।

उपज एवं जैतून की खेती का आर्थिक विश्लेषण

जैतून के पौधारोपण के 4–5 वर्ष पश्चात् फल लगने शुरू हो जाते हैं। सर्वाधिक फल 15–20 वर्ष की अवस्था होने पर ही प्राप्त होते हैं। प्रति वर्ष वृक्षों की डालियों की कटाई–छँटाई की जाती है। जैतून के फलों से 10–15 प्रतिशत तक तेल निकाला जाता है। प्रारम्भ में फल में तेल की मात्रा कम होती है लेकिन 7–8 वर्ष की उम्र में 13–15 प्रतिशत तक तेल प्राप्त किया जा सकता है। विश्व औसत के अनुसार एक हैक्टर क्षेत्रफल से लगभग 1500–1800 किलोग्राम तेल प्राप्त होता है। तेल का औसत बाजार मूल्य रुपये 180 प्रति किलोग्राम के आधार पर किसान को प्रति हैक्टर औसत सकल आय रुपये 2.50–3.00 लाख तक प्राप्त हो सकती है।

निष्कर्ष

भारत की विविध कृषि जलवायु परिस्थितियां, लवण प्रभावित भूमि सहित परती एवं बंजर भूमि का उपयोग जैतून की खेती के लिए किया जा सकता है। जैतून के सफल उत्पादन के लिए गुणवत्तायुक्त किस्मों की उपलब्धता महत्वपूर्ण है। जैतून का तेल अंतरराष्ट्रीय बाजार में सबसे मूल्यवान उत्पादों में से एक है, इसलिए जैतून के व्यवसायिक उत्पादन के लिए भारत में जैतून की विविध किस्मों का मूल्यांकन एक आवश्यक कदम होगा। जैतून उत्पादन के संबंध में तकनीकी, प्रसार, पोषण और आर्थिक मुद्दों का विश्लेषण करने की आवश्यकता है। जैतून की खेती के लिए उचित नई भूमि की पहचान फायदेमंद होगी जो तेल के बड़े पैमाने पर आयात की निर्भरता कम करेगी। देश में जैतून उत्पादकों की आर्थिक समृद्धि के लिए उपयुक्त औद्योगिक और विपणन ढूँढना भी एक चुनौती है। कच्चे जैतून तेल को खाने लायक बनाने के लिए रिफाइनिंग की जरूरत होगी। अतः इनके लिए एक आधुनिक रिफाइनरी लगानी होगी। जैतून की विभिन्न प्रजातियों का लवण व क्षार सहनशीलता का मूल्यांकन अभी भारत में किया जाना है हालांकि वैश्विक अनुसंधान से स्पष्ट है कि जैतून की खेती लवणीय भूमि में संभव है। अतः जैतून के सफल उत्पादन के लिए लवण सहनशील प्रजातियों को चिह्नित कर उनके लिए आवश्यक सस्य क्रियाओं का मानवीकरण व अनुमोदिन किसानों को जागरूक व प्रेरित करने की आवश्यकता है।

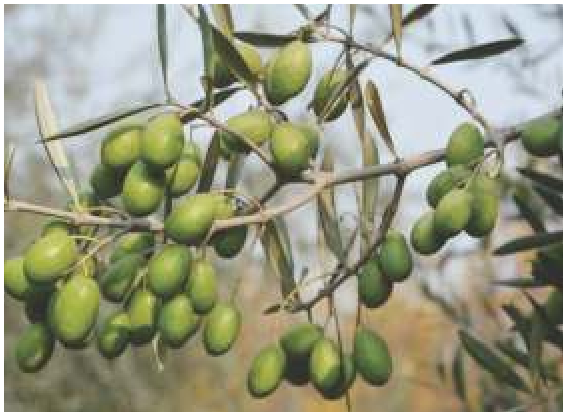

कोराटीना प्रजाति

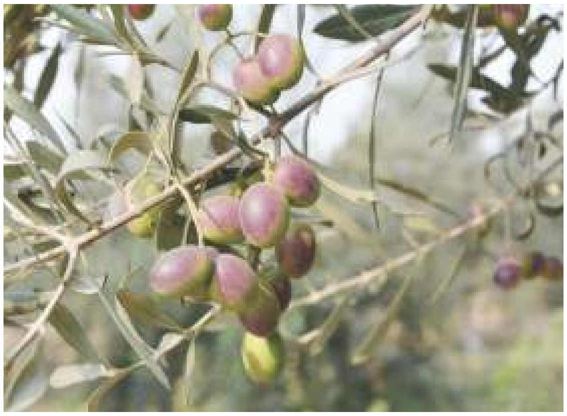

फ्रंटोइयो प्रजाति

समाप्त

अंकित दीप, प्रद्युम्न बर्नवाल,* चित्रनायक, खुशबू कुमारी, अशोक कुमार डोडेजा
डेरी अभियांत्रिकी प्रभाग, भाकृअनुप–राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान, करनाल– 132 001 (हरियाणा)
*E-mail: pbarnwal@rediffmail.coma

भारतीय डेरी उत्पादों की गुणवत्ता में कारगर त्रिस्तरीय यंत्रीकृत तकनीक

भारतीय डेरी उत्पादों का प्राचीन काल से ही देश के कृषक समाज की आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक और पोषण में महत्वपूर्ण योगदान रहा है। वर्ष 1970 में शुरू किये गए ऑपरेशन फ्लड कार्यक्रम द्वारा भारत दुनिया के सबसे बड़े दूध उत्पादक के रूप में स्थापित हो गया। भारत में वर्ष 2016–2017 की वार्षिक विकास दर 6.37 प्रतिशत के साथ, दूध उत्पादन 1654 लाख मिलियन टन रिकॉर्ड स्तर तक पहुंच गया है। सामान्यतः भारत में दूध आधारित मिठाईयों की सुरक्षा पहलुओं की बढ़ती जागरूकता को ध्यान में रखते हुए, उपभोक्ता इन उत्पादों को संगठित क्षेत्र से खरीदना पसंद कर रहे हैं। भारतीय बाजार में पारंपरिक दूध उत्पादों की व्यापक लोकप्रियता और स्वीकार्यता के बावजूद, संगठित क्षेत्र अभी तक पूर्ण रूप से बाजार की क्षमता का उपयोग नहीं कर पायें हैं, जिसके विभिन्न कारण हो सकते हैं, जैसेः उपयुक्त तकनीक व पैकेजिंग सामग्री की अपर्याप्तता, कम गुणवत्ता और गुणवत्ता आश्वासन प्रणाली की कमी इत्यादि।

भारत में डेरी उद्योग की विकास दर बढ़ने के साथ–साथ ऊर्जा कुशल और अत्यधिक परिष्कृत मशीनीकृत प्रणालियों की मांग भी बढ़ रही है। आज भी ज्यादातर पारंपरिक दूध उत्पाद पारंपरिक पद्धति से निर्मित होते हैं, जिसमें बहुत सारी कमियां हैं, जैसे कम ऊष्मा हस्तांतरण दर, अशुद्ध या खराब पदार्थों का जमा होना, अस्वच्छता, विभिन्न बैच के उत्पाद की गुणवत्ता में असमानता तथा अपर्याप्त स्वच्छता मानकों और ऑपरेटर का तनावग्रस्त होना इत्यादि। पारंपरिक दूध उत्पाद तरल दूध की तुलना में अधिक समय तक रखे जा सकते हैं। तरल दूध की भण्डारण व उपयोग की अवधि, सामान्य वातावरण में केवल 5 से 6 घंटे होती है जबकि पारंपरिक दूध उत्पाद के माध्यम से हम दूध के अवयवों को लम्बे समय तक संग्रहीत व उपयोग कर सकते हैं।

लघु–स्तरीय प्रौद्योगिकियों का इस्तेमाल करके बड़े पैमाने पर उत्पादन करना कठिन है। उच्च लाभप्रदता के अलावा, पारंपरिक डेरी उत्पादों की लोकप्रियता बड़े पैमाने पर उत्पादन के रूप में बढ़ी है। पारंपरिक दूध उत्पादों के बड़े पैमाने पर निर्माण से उनके उच्च लाभप्रदता और निर्यात क्षमता के कारण डेरी संयंत्र को आर्थिक रूप से अधिक व्यवहार्य बनाया जा सकता है। इस तरह पारंपरिक डेरी उत्पादों के निर्माण के लिए यंत्रीकृत प्रणाली के डिजाइन और विकास पर काम करने को सर्वोच्च प्राथमिकता देनी चाहिये। इस आलेख में बर्फी, खोया, बासुंदी और रबड़ी जैसे उत्पादों के बड़े पैमाने पर निर्माण के लिए स्क्रैप सतह ऊष्मा विनिमयक (एस.एस.एच.ई.) के उपयोग पर जानकारी को प्रस्तुत किया गया है।

स्क्रैप सतह ऊष्मा विनिमयक (एस.एस.एच.ई.) की आवश्यकताः

भाप की जैकेट वाली केतली में निर्मित दूध उत्पाद, स्वभाविक रूप से कई कमियों से ग्रस्त होते हैं, जिनका विवरण निम्नलिखित है :

- कम ऊष्मा स्थानांतरण गुणांक के कारण उपकरणों का भारी (बड़ा आकार) होना।

- खुले वातावरण के कारण अस्वास्थ्यकर प्रक्रिया (विधि) होना।
- उष्मीय सतह पर दूध अवशेषों की दृढ़ पतली परत (फाउलिंग) उपकरण के खराब प्रदर्शन को बढ़ावा देती है तथा साफ–सफाई को कठिन बना देती है।
- बड़ी मात्रा में उत्पादन के लिए उपकरणों का अनुपयुक्त होना।
- उत्पाद का ज्यादा समय में निर्माण होना तथा उत्पाद के थोक (बड़ी मात्रा) में नुकसान के लिए अधिक खतरा होना (पूरे बैच का खराब होना)।
- कारीगर (ऑपरेटर) पर अत्यधिक तनाव और थकान।
- बैच दर बैच उत्पाद की गुणवत्ता में भिन्नता।
- उत्पाद की झाग बनाने की प्रवृत्ति के कारण कार्यक्षमता से कम क्षमता में उपयोग होना।

उपरोक्त सभी समस्याओं को पतली फिल्म स्क्रैप सतह ऊष्मा विनिमयक (एस.एस.एच.ई.) तकनीक का उपयोग करके दूर किया जा सकता है। इस उपकरण में उष्मीय सतह लगातार स्क्रैप की (खुरची) जाती है। इस तकनीक से उष्मीय हस्तांतरण सतह पर उत्पाद की धीमी गति से चलती हुई परत जो कि उष्मा हस्तांतरण की दर को प्रतिबंधित करती है, उसे जल्दी से हटा दिया जाता है और तरल के थोक (ढेर) में मिलाया जाता है, साथ ही ताजा उत्पाद सतह के संपर्क में लाया जाता है। ब्लेड की सहायता से ऊष्मा और द्रव्यमान का स्थानांतरण बढ़ जाता है।

एस.एस.एच.ई. की प्रमुख विशेषताएँ:

- उत्पाद, ऊष्मीय क्षेत्र में, कम समय (कुछ सेकेन्ड) के लिए रहता है, इसलिए यह ऊष्मा – संवेदनशील उत्पादों के संचालन (हैंडलिंग) और प्रसंस्करण के लिए एक उचित माध्यम है।
- उत्पाद के कम ठहराव (रेजिडेंस) समय के कारण उत्पाद में कम दुष्प्रभाव (साइड रिएक्शन), अपघटन और इसका ज्यादा उत्पादन होता है।
- उत्पाद की पतली परत और रोटर द्वारा होने वाले विक्षोभ (टरबुलेंस) के कारण उच्च उष्मा स्थानांतरण और उष्मा दर मिलती है, इसलिए अत्यधिक चिपचिपे पदार्थों को, जिनकी पपड़ी (स्केल) बन सकती हो, आसानी से प्रसंस्करित किया जा सकता है।
- उत्पाद गर्म करने वाली सतह एक पतली फिल्म के रूप में ही सीमित है; फलस्वरूप उपकरण के अंदर उत्पाद कम जगह (आयतन) में रहता है, अतः एस.एस.एच.ई. के अंदर उत्पाद की कम से कम नुकसान (स्पोईलेज) होता है जबकि बैच प्रक्रिया में लगभग पूरे बैच का नुकसान होता है।
- उपकरण के अंदर उत्पाद की बेहतर प्रवाह विशेषताओं के कारण इस प्रणाली से अर्ध–ठोस रूप में उत्पादों को ऊष्मा से होने वाली क्षति के बिना भी संभाल सकते हैं।
- इसमें स्वचालन (ऑटोमेशन) और सफाई (सी आई पी) के लिए आवश्यक प्रावधान है।
- यह एक स्वच्छ प्रक्रिया है क्योंकि यह पूरी तरह से बंद वातावरण में होती है।

- ऑपरेटरों पर कम शारीरिक तनाव होता है क्योंकि उनके द्वारा केवल वाल्वों को बंद करना या खोलना होता है।
- उत्पाद की एक समान गुणवत्ता मिलती है क्योंकि यह एक लगातार प्रसंस्करण प्रक्रिया है।
- प्रक्रिया क्षेत्र में उत्पाद कम मात्रा में होना।
- कम क्षमता पर चलाने की योग्यता।
- व्यर्थ होने वाली ऊष्मा का पुनः प्रयोग संभव –ऊर्जा संरक्षण।
- कच्चे एवं सांद्रित दूध का उपयोग करना संभव है जिससे प्रसंस्करण क्षमता बढ़ सकती है।
- सतह का न्यूनतम दूषित या गंदा होना।
- ऐसे तरल पदार्थ को, जिनमें झाग बनने की प्रवृत्ति हो, आसानी से नियंत्रित किया जा सकता है।
- बेहतर नियंत्रण और प्रक्रिया का अनुकूलन संभव है।

दानेदार या चिपचिपे उत्पादों और ऊष्मा हस्तांतरण की सतह को खराब करने वाले उत्पादों का प्रसंस्करण करने के लिए स्क्रैप सतह ऊष्मा विनिमयक (एस.एस.एच.ई.) एक अच्छा एवं उपयुक्त विकल्प है। एस.एस.एच.ई. में स्क्रेप्पर ब्लेड (खुरचन पत्ती) घूर्णन करके ऊष्मा हस्तांतरण की सतह पर काम कर रहे द्रव को एक फिल्म के रूप में फैला देता है। प्रत्येक स्क्रेपर ब्लेड, पूल (इकट्ठा पदार्थ) से निश्चित मात्रा में तरल पदार्थ निकालता है और इसे ऊष्मा हस्तांतरण सतह के साथ गति प्रदान करता है। तरल पदार्थ किसी भी समय पर रोटर ब्लेड के सामने उठता है। ब्लेड एक्शन की वजह से फिल्म में द्रव का कुछ भाग फिल्लेट (गड्ढे) के द्रव में मिश्रित होता है और उसी समय पर बराबर मात्रा में तरल पदार्थ ब्लेड की नोक के आगे दबा कर द्रव के फिल्म की मोटाई को बनाये रखता है।

तीन चरण एस.एस.एच.ई. (चित्र) में तीन समान पतली फिल्म स्क्रैप सतह ऊष्मा विनिमयक (हीट एक्सचेंजर) शामिल है। इसमें एक फीडिंग टैंक स्क्रू पम्प के साथ तथा द्रव प्रवाह की दर में बदलाव को मापने के लिए एक चुंबकीय प्रवाह मीटर लगा हुआ है। भाप का दबाव मापक, वायुवीय वाल्व, वायु दबाव सूचक और स्वचालित नियंत्रक प्रणाली (कंट्रोल पैनल) लगा हुआ है।

चित्रः त्रिस्तरीय पतली फिल्म स्क्रैप सतह ऊष्मा विनिमयक (टी.एफ.एस.एस.एच.ई.) तकनीक

भारतीय डेरी उत्पादों के यांत्रिक उत्पादन के लिए एस.एस.एच.ई. का उपयोग

निरंतर खोया का निर्माण

खोया आंशिक रूप से ऊष्मा निर्जलित दूध उत्पाद है, जो कई स्वदेशी मिठाइयों को बनाने के लिए व्यापक रूप से आधार सामग्री के रूप में उपयोग किया जाता है। खोया आधारित मिठाइयों की बढ़ती मांग से बड़े पैमाने पर उत्पादन की आवश्यकता है ताकि एक समान उत्पाद की गुणवत्ता, उत्पाद सुरक्षा, ऊर्जा संरक्षण आदि को सुनिश्चित किया जा सके। इस दिशा में तीन चरण एस.एस.एच.ई. विभिन्न परिचालन सुविधाओं और उपकरणों को शामिल करके बनाया गया प्रौद्योगिकी यंत्र है। मानकीकृत भैंस का दूध (2, 3, 4 और 6 प्रतिशत वसा) संतुलन टैंक में डाला जाता है। पहले और दूसरे चरण की रोटर गति 200 चक्कर प्रति मिनट पर रखी जाती है और तीसरे चरण को 20, 30 और 40 चक्कर प्रति मिनट पर चलाया जाता है। भाप का दबाव पहले और दूसरे चरण में 4 और 2 कि.ग्रा./सेमी^{2} और तीसरे चरण में 1 से 1.5 कि.ग्रा./सेमी^{2} के बीच रखते हैं, ताकि लगभग समान गठन का उत्पाद प्राप्त हो सके। इसमें दूध की प्रवाह दर को 200 कि.ग्रा./घंटा रखा जाता है।

निरंतर बासुंदी का निर्माण

बासुंदी एक पारंपरिक ऊष्मा निर्जलित दूध उत्पाद है जिसमें मधुर कैरामल और सुखद सुगंध, हल्के से मध्यम भूरा रंग, गाढ़ा गठन और मलाईदार स्थिरता वाले नरम बनावट वाले गुच्छे, समान रूप से मिश्रित होते हैं। इसमें उचित सांद्रण में दूध के सभी ठोस पदार्थ और अतिरिक्त चीनी और सूखे फल भी शामिल हैं। इसे स्वादिष्ट मीठे पकवान के रूप में भी उपयोग करते हैं। यह महाराष्ट्र, गुजरात और कर्नाटक के कुछ हिस्सों में लोकप्रिय है और मुख्य रूप से त्योहारों, विवाह आदि जैसे कुछ विशेष अवसरों पर गृहिणियों द्वारा घर पर तैयार किया जाता है और इसकी कैरामल, सुखद और मीठा स्वाद और मोटी स्थिरता के कारण इसे बहुत पसंद किया जाता है। मानकीकृत भैंस के दूध (5.1 प्रतिशत वसा और 8.5 प्रतिशत एस.एन.एफ., वसा/एस.एन.एफ. अनुपात 0.6) को बैलेंस टैंक में डालते हैं। पहले और दूसरे चरण की रोटर गति 100 से 175 चक्कर प्रति मिनट रखी जाती है और तीसरे चरण में भाप और रोटर का उपयोग नहीं करते हैं। भाप का दबाव पहले और दूसरे चरण में 1 से 1.5 कि.ग्रा./से.मी.^{2} के बीच रखते हैं, ताकि लगभग समान स्थिरता के अंतिम उत्पाद प्राप्त हो सके। आवश्यकता अनुसार दूध की प्रवाह दर 100–200 कि.ग्रा./घंटा के बीच रख सकते हैं।

निरंतर रबड़ी का निर्माण

रबड़ी एक पारंपरिक भारतीय डेरी उत्पाद है जो कि भारत और निकटवर्ती देशों जैसे पाकिस्तान, बांग्लादेश इत्यादि में भी लोकप्रिय है। यह एक ऊष्मा संघनित तथा मीठा दूध उत्पाद है, जिसमें जमी हुई मलाई की कई परतें होती हैं। मानकीकृत भैंस के दूध (6 प्रतिशत वसा और 9 प्रतिशत एसएनएफ) को बैलेंस टैंक में डाला जाता है। रबड़ी को तीन चरण पतली फिल्म स्क्रैप सतह उष्मीय विनिमयक का उपयोग करके निर्मित करते हैं। पहले और दूसरे चरण की रोटर गति 100 से 150 चक्कर प्रति मिनट के बीच और तीसरे चरण को 15 चक्कर प्रति मिनट में रखा जाता है। आवश्यकता अनुसार दूध की प्रवाह दर 120–200 कि.ग्रा./घंटा के बीच रख सकते हैं।

निरंतर बर्फी का निर्माण

बर्फी एक लोकप्रिय दूध आधारित मिठाई है, जिसमें आधार सामग्री अनिवार्यतः खोया है। उपभोक्ताओं की मांग के मुताबिक चीनी को अलग–अलग अनुपातों में डाला जाता है। बर्फी को दूध के ठोस (खोया) और चीनी को एक समरूप स्थिरता के साथ गर्म करके तैयार किया जाता है जिसके बाद शीतलन और छोटे घनाकार टुकड़ों (क्यूब्स) में काट दिया जाता है। मानकीकृत भैंस के दूध (6 प्रतिशत वसा, 9 प्रतिशत एसएनएफ और 0.17 प्रतिशत एलए अम्लता) को बैलेंस टैंक में डाला जाता है। भाप के दबाव को पहले और दूसरे चरण में 4 और 2 कि.ग्रा./से.मी.^{2} और तीसरे चरण में 1.5 से 2 कि.ग्रा./से.मी.^{2} के बीच रखा जाता है, ताकि लगभग समान बनावट का उत्पाद प्राप्त हो सके। आवश्यकतानुसार दूध की प्रवाह दर 155–205 कि.ग्रा./घंटा के बीच रख सकते हैं।

इस प्रकार त्रिस्तरीय एस.एस.एच.ई. एक बहु–उद्देशीय दूध प्रसंस्करण यन्त्र है, जिसका उपयोग भारतीय दूध उत्पादों (बर्फी, खोया, बासुंदी और रबड़ी जैसे उत्पादों) के बड़े स्तर पर उत्पादन के लिए बहुत सफल साबित हो सकता है।

समाप्त

⌘ उत्तम खेती आप सेती, मध्यम खेती भाई सेती।
निक्कट खेती नौकर सेती, बिगड़ गई तो बलाय सेती॥ ⌘

कैलाश प्रजापत, सतीश कुमार सनवाल एवं प्रबोध चन्द्र शर्मा
भाकृअनुप–केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, करनाल–132001 (हरियाणा)
E-mail: kailash.prajapat@icar.gov.in

किनोवा : लवणीय-शुष्क पारिस्थितिकी एवं परिवर्तनशील जलवायु में सक्षम पोष्टिक फसल

भारत 1.27 अरब जनसंख्या के साथ विश्व में दूसरे स्थान पर है जबकि विश्व का केवल 2.4 प्रतिशत क्षेत्रफल एवं 4 प्रतिशत शुद्ध जल संसाधन भारत में है। यह एक कृषि प्रधान देश है जहाँ कृषि अनुसंधान एवं तकनीकी में नवीनीकरण के माध्यम से देश को खाद्यान्न निर्भर बनाया है। वर्ष 2016–17 के दौरान देश में 273.3 मिलियन टन खाद्यान्न उत्पादन हुआ है। वर्तमान में हम अपने देश की खाद्यान्न आपूर्ति के साथ–साथ दूसरे देशों को भी कृषि उत्पादों का निर्यात कर रहे हैं। बढ़ती हुई जनसंख्या के साथ–साथ देश की खाद्यान्न एवं अन्य कृषि उत्पादों की आवश्यकता भी बढ़ रही है। सन् 2025 तक जनसंख्या की जरूरतों को पूरा करने के लिये देश को 280 मिलियन टन खाद्यान्न उत्पादन की आवश्यकता होगी। वर्तमान वृद्धि दर को देखते हुए देश में खाद्यान्न की कमी नहीं होगी परन्तु खाद्य सुरक्षा के साथ–साथ पोषण सुरक्षा भी एक आवश्यक घटक है। वर्तमान में हमारे देश में प्रत्येक दो में से एक बच्चे की आंशिक वृद्धि पाई गई है तथा एक तिहाई महिलाओं में कम वजन पाया गया है। 80 प्रतिशत बच्चों एवं 56 प्रतिशत महिलाओं में खून की कमी है। इसके साथ ही भारतीय कृषि में कई चुनौतियाँ आ रही है, जो भविष्य में कृषि उत्पादन एवं किसानों की आय को प्रभावित करेगी। देश में 67.4 लाख मिलियन हैक्टर क्षेत्र लवण प्रभावित है जहाँ पैदावार बहुत कम है। लगभग 60 प्रतिशत क्षेत्र वर्षा आधारित एवं शुष्क खेती के अन्तर्गत आता है। बदलते हुए जलवायु परिवेश में इन क्षेत्रों में फसल उत्पादन अधिक चुनौतीपूर्ण हो रहा है। देश की बढ़ती हुई खाद्य उत्पादन की पूर्ति एवं इन क्षेत्रों के किसानों की आर्थिक स्थिति में सुधार हेतु इन क्षेत्रों में सफल कृषि उत्पादन तकनीक बहुत आवश्यक है। उपरोक्त परिस्थितियों में ऐसी फसलों का चुनाव करना होगा जो अधिक बाजार मूल्य की हो एवं पोषण की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण हो।

किनोवा

किनोवा : एक परिचय

किनोवा (चिनोपोडियम किनोवा) एक ऐसी फसल है जो सूखा, लवणता, क्षारीयता, पाला आदि के प्रति सहनशील है। यह एमेरेन्थेसी कुल के चिनोपोडियसी उपकुल की फसल है। अपने देश में इस कुल की सब्जियाँ जैसे बथुआ एवं चौलाई आदि काफी प्रचलित हरी सब्जियाँ हैं। किनोवा विश्व में दक्षिणी अमेरिका के बोलीविया, पेरू एवं इक्वाडोर देशों की मुख्य खाद्य फसल है। इसको समुद्र तल से लेकर 2000–4000 मीटर तक उगाया जा सकता है। इन सब विशेषताओं के होते हुए भी अभी तक देश में किनोवा एक निम्न उपयोगी फसल है। किनोवा के लिए उपयुक्त जलवायु के अनुसार इसे भारत में सर्दी ऋतु (नवम्बर से मार्च) में उगाया जा सकता है। वर्तमान में किनोवा आन्ध्र प्रदेश, महाराष्ट्र एवं राजस्थान राज्यों में कुछ जगहों पर किसानों द्वारा उगाई जा रही है।

किनोवा का पोष्टिक महत्व

किनोवा के दानें

किनोवा मुख्य रूप से दानों के लिये उगाई जाती है। किनोवा के दानें दूसरी फसलों की तुलना में काफी अधिक पोष्टिक होते हैं। इसके पौधों व पत्तियों को हरे चारे के रूप में भी काम ले सकते हैं। विश्व स्तरीय अध्ययनों से ज्ञात होता है कि किनोवा के दानें पोष्टिकता में अन्य फसलों की तुलना में काफी श्रेष्ठ है। इसके दानों में औसतन 13.8 प्रतिशत प्रोटीन एवं 51 से 61 प्रतिशत शर्करा होती है। रेशों की मात्रा भी 4.1 प्रतिशत पाई गई है। किनोवा दानों में विटामीन, खनिज तत्व आदि भी प्रचुर मात्रा में होते हैं। मुख्य फसलों गेहूँ, मक्का एवं चावल की तुलना में किनोवा के दानों का पोष्टिक मान तालिका 1 में दर्शाया गया है। स्वादिष्ट एवं सुपाच्य होने के कारण किनोवा सहजता से ग्राहय है। उपरोक्त विशेषताओं के कारण किनोवा को पृथ्वी पर मौजूद सर्वाधिक स्वास्थ्यवर्धक व पोष्टिक खाद्य पदार्थों में सम्मिलित किया गया है।

किनोवा की विविध विशेषताओं के कारण खाद्य एवं कृषि संगठन ने वर्ष 2013 को "अंतर्राष्ट्रीय किनोवा वर्ष" के रूप मे घोषित किया था। इसके दानों को चावल की तरह पकाकर खाया जा सकता है। इनका आटा बनाकर भी कई तरह के खाद्य पदार्थ जैसे ब्रेड, पास्ता, केक, पेस्ट्री आदि बनाए जा सकते हैं। इन सब विशेषताओं के साथ किनोवा के दानों में अवांछित तत्व सेपोनीन भी पाया जाता है। यह दाने के बाहरी आवरण में होता है। मिलींग द्वारा बाहरी आवरण को हटाया जाता है जिससे सेपोनीन भी दानों से हट जाता है। इसके अलावा दानों को ठण्डे पानी के साथ रगड़कर भी ऊपरी आवरण को हटाया जा सकता है।

किनोवा के स्वास्थ्य लाभ

- किनोवा में सभी नौ प्रकार के आवश्यक एमिनो अम्ल प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होतें हैं। इन गुणवत्तायुक्त संपूर्ण प्रोटीन का शाकाहारी लोगों के आहार में विशेष महत्व है।
- किनोवा में रेशे प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं। रेशे रक्त में शर्करा के स्तर को नियंत्रित करने, कोलेस्ट्रॉल को कम करने व शरीर का वजन नियंत्रित करने में सहायक होते हैं।
- किनोवा प्राकृतिक रूप से ग्लूटेन रहित होता है जो ग्लूटेन के प्रति एलर्जी वाले लोगों के लिए पूरी तरह सुरक्षित है।
- किनोवा के दानों में काफी कम मात्रा में "ग्लायसिमिक इंडेक्स" (लगभग 53) होता है। अतः डाइबिटीज, हृदय रोग एवं मोटापे से बचाता है। परन्तु कार्बोहाइड्रेट की अधिकता उन लोगों के लिए इतनी उपयोगी नहीं होती है जिन्हें कम कार्बोहाइड्रेट वाला भोजन लेना होता है।
- किनोवा कैल्शियम, पोटेशियम, लोहा, जस्ता, फॉस्फोरस, मैंगनीज, मैग्निशियम व कॉपर का उत्तम स्रोत है। इसके दानों में विटामिन बी व ई भी प्रयाप्त मात्रा में मौजूद होते हैं। कुछ मात्रा में ओमेगा 3 वसीय अम्ल (फैटी एसिड) भी पाए जाते हैं।

- इसमें "क्वेसेंटिन" व "केम्फ्फेरॉल" नामक फ्लैवोनॉइड्स भी प्रचुर मात्रा में होते है जो एंटी–बैक्टीरियल एंटी–ऑक्सीडेंट, एंटी–वायरल व एंटी–कैंसर के रूप में काफी लाभदायक हैं।

तनावपूर्ण वातावरण में किनोवा उत्पादन

वैश्विक अध्ययनों से ज्ञात होता है कि किनोवा कई तरह के अजैविक तनावों जैसे मृदा लवणता, पानी की कमी, कम एवं अधिक पीएच मान, अधिक सौर विकिरण, पाला आदि के प्रति सहनशील पाया गया है। पानी की कमी के समय पौधों में विशेष तरह की कार्यिकी प्रक्रियाएं होती है जो शुष्क क्षेत्रों में किनोवा को अनुकूल बनाती है। इसकी गहरी जड़ें, विशेष प्रकार की संवहनी ग्रन्थियाँ, मोटा कोशिका आवरण, पत्ती के आकार का छोटा हो जाना, रन्ध्रों की प्रतिक्रिया आदि किनोवा को पानी की कमी को सहन करने की क्षमता प्रदान करते हैं। किनोवा पाले के प्रति भी सहिष्णु पाया गया है। यह चार घण्टे तक –8 डिग्री सेल्सियस तापमान को सहन कर सकता है।

किनोवा एक लवण सहनशील पौधा है इसलिए इसे हेलोफाइट की संज्ञा दी जाती है। लवणीय परिस्थिति में पौधों के ऊतक अधिक मात्रा में लवण एकत्रित कर लेते हैं एवं पत्ती में पानी की क्षमता को बनाए रखते हैं जिससे वाष्पोत्सर्जन एवं कोशिका का स्फीति दाब नियंत्रित रहता है।

अध्ययनों से ज्ञात होता है कि किनोवा मध्यम लवणता (ईसी 10–20 डेसीसीमन्स/मीटर) में कम लवणता की अपेक्षा अधिक पैदावार देता है। इसी प्रकार पाया गया कि लवणीय जल के साथ किनोवा के विकास में वृद्धि होती है जो 100 मिलीमोलर सोडियम क्लोराइड के साथ इष्टतम थी। इनके अनुसार किनोवा एक ऐसा लवण सहिष्णु पादप है जिसको समुद्री जल की 40 प्रतिशत लवणता के साथ भी उगाया जा सकता है। 10 डेसीसीमन्स पानी की लवणता का किनोवा की वृद्धि पर कोई विपरीत प्रभाव नहीं पाया गया। किनोवा 40 डेसीसीमन्स/मीटर तक सिंचाई जल की लवणता को आसानी से सहन कर सकता है तथा 50 प्रतिशत पानी की कमी के साथ उपज में कोई सार्थक कमी नहीं होती व 20 से 30 डेसीसीमन्स/मीटर लवणता की सिंचाई के साथ किनोवा की उपज में क्रमशः 24 एवं 34 प्रतिशत कमी आई।

किनोवा की व्यापारिक संभावनाएं

विपरीत परिस्थितियों में उत्पादन क्षमता एवं श्रेष्ठ पोष्टिक गुणों के कारण किनोवा की देश–विदेश में मांग बढ़ रही है। वर्तमान में किनोवा का बाजार भाव 500 से 1000 रुपये प्रति कि.ग्रा. मिल रहा है। किनोवा के दानों का मूल्य संवर्धन कर विभिन्न उत्पाद जैसे पास्ता, दलिया, चीप्स, उपमा, बिस्कुट आदि बनाए जा सकते हैं। भारत में किनोवा की कृषि एवं व्यापारिक संभावनाएं अच्छी हो सकती हैं।

निष्कर्ष

किनोवा एक विपरीत परिस्थितियों में अच्छी उपज देने वाली फसल है। देश के सूखा एवं लवण प्रभावित क्षेत्रों में जहाँ नगण्य फसलोत्पादन होता है एवं किसानों की आर्थिक स्थिति कमजोर है, ऐसे क्षेत्रों के लिये किनोवा एक प्रभावी फसल हो सकती है। साथ ही यह अधिक पोष्टिक होने के कारण देश में कुपोषण से ग्रसित जनसंख्या के लिये एक अच्छा खाद्य स्त्रोत हो सकता है। भारत मे अभी किनोवा नई फसल है। अनुसंधान द्वारा देश की प्रतिकूल परिस्थितियों (सूखा व लवणता) के लिए अनुकूल किस्म का अवलोकन एवं सरकार की भागीदारी द्वारा विपणन की उचित व्यवस्था इस फसल को किसानों द्वारा अपनाने में मदद कर सकता है।

तालिका 1: किनोवा के दानों व मुख्य फसलों के पोष्टिक मान की तुलना

घटक	**किनोवा**	**मक्का**	**चावल**	**गेहूँ**
ऊर्जा (किलो कैलोरी प्रति 100 ग्राम)	399	408	372	392
प्रोटीन (ग्राम प्रति 100 ग्राम)	16.5	10.2	7.6	14.3
वसा (ग्राम प्रति 100 ग्राम)	6.3	4.7	2.2	2.3
कार्बोहाइड्रेट (ग्राम प्रति 100 ग्राम)	69.0	81.1	80.4	78.4
अमीनो एसिड (ग्राम प्रति 100 ग्राम प्रोटीन)				
आईसोलुसिन	4.9	4.0	4.1	4.2
लूसिन	6.6	12.5	8.2	6.8
लाइसिन	6.0	2.9	3.8	2.6
मेथिओनिन	5.3	4.0	3.6	3.7
फिनायलमिन	6.9	8.6	10.5	8.2
थ्रेऑनिन	3.7	3.8	3.8	2.8
ट्रिप्टोफैन	0.9	0.7	1.1	1.2
वेलिन	4.5	5.0	6.1	4.4
खनिज (मिलीग्राम प्रति 100 ग्राम शुष्क पदार्थ)				
कैल्शियम	148.7	17.1	6.9	50.3
लोहा	13.2	2.1	0.7	3.8
मैग्नीशियम	249.6	137.1	73.5	169.4
फॉस्फोरस	383.7	292.6	137.8	467.7
पोटाश	926.7	377.1	118.3	578.3
जस्ता	4.4	2.9	0.6	4.7

समाप्त

⌘ निततई खेती दूजै गाय, जो ना देखै ऊ की जाय।
खेती करै रात घर सोवै, काटै चोर मूंड़ धर रोवै॥ ⌘

पूजा[1], अश्वनी कुमार[2],बाबू लाल मीणा[2], विशाल गोयल[1], अनीता मान[2] एवं नीरज कुलश्रेष्ठ[1]
[1]भाकृअनुप–गन्ना प्रजनन संस्थान, क्षेत्रीय केन्द्र, करनाल–132001 (हरियाणा)
[2]भाकृअनुस–केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, करनाल–132001 (हरियाणा)
E-mail: kailash.prajapat@icar.gov.in

लवणग्रस्त मृदाओं में गन्ने की सफल खेती

विश्व में ब्राजील के बाद भारत चीनी का दूसरा सबसे बड़ा उत्पादक देश है। वर्ष 2014–15 में विश्व स्तर पर भारत का चीनी उत्पादन में लगभग 17 प्रतिशत योगदान था। गन्ना प्रकाश ऊर्जा को अधिक दक्षता से जैव ऊर्जा में परिवर्तित करने वाली फसल है। गन्ना लंबी अवधि की फसल होने व उच्च बायोमास का उत्पादन करने के कारण अधिक मात्रा में पानी, पोषक तत्वों, कार्बन डाईऑक्साईड और सौर ऊर्जा का उपयोग करता है। राष्ट्रीय सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) में गन्ने का महत्वपूर्ण योगदान (1.1 प्रतिशत) है। जलवायु और मृदा गुण गन्ने की फसल की वृद्धि दर को प्रभावित करते हैं। अजैविक तनाव जैसे सूखा, लवणता, उच्च और निम्न तापमान आदि कम फसल वृद्धि और उत्पादकता के प्राथमिक कारण हैं। मिट्टी में नमक की अधिक मात्रा से गन्ने की फसल की वृद्धि और विकास पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। दुनिया के खेती वाले क्षेत्र का लगभग 20 प्रतिशत और सिंचाई वाले क्षेत्र की लगभग आधी जमीन लवणता से प्रभावित है। भारत में लगभग 67.4 लाख हैक्टर भूमि लवणीय और क्षारीय स्थितियों से प्रभावित है जिसमें लवणीय और क्षारीय भूमि क्रमशः 40 और 60 प्रतिशत है जोकि सफल कृषि उत्पादन के लिये एक गंभीर खतरा है। लवणग्रस्त मृदाओं के बढते क्षेत्र की समस्या बढ़ती जा रही है। कृषि योग्य भूमि एवं जल के घटते संसाधनों से फसल उत्पादन एवं उत्पादकता पर काफी विपरित प्रभाव पड़ता है जो टिकाऊ कृषि की धारणा पर आशंका पैदा करती है। अधिक लवणीय जल का प्रयोग जिस भूमि पर किया जाता है उस भूमि में उगाई जाने वाली फसलें प्रभावित होती है। भारत में गन्ने की खेती बड़े पैमाने पर उष्णकटिबंधीय और उपोष्णकटिबंधीय क्षेत्र में की जाती है। उष्णकटिबंधीय क्षेत्र में आंध्र प्रदेश, छत्तीसगढ़, गोवा, गुजरात, कर्नाटक, केरल, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, ओडिशा, पुडुचेरी और तमिलनाडु राज्य शामिल हैं जबकि उपोष्णकटिबंधीय क्षेत्र में बिहार, झारखंड, हरियाणा, पश्चिम बंगाल, पंजाब, राजस्थान, उत्तर प्रदेश और उत्तराखंड शामिल हैं। उष्णकटिबंधीय और उपोष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में जलवायु विभिनन्ता के कारण गन्ने की वृद्धि, विकास और गुणवत्ता में बहुत अंतर आता हैं। उपोष्ण क्षेत्रों की तुलना में गन्ने की उत्पादकता उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में अधिक है। गन्ने की उत्पादकता, उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में सबसे अधिक तमिलनाडु (104.6 टन/हैक्टर), कर्नाटक (89.3 टन/हैक्टर) तथा उपोष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में सबसे अधिक हरियाणा (72.5टन/हैक्टर), पंजाब (69.45 टन/हैक्टर) और उत्तर प्रदेश (66 टन/हैक्टर) में है। उपोष्ण क्षेत्रों में कम उत्पादकता का कारण फसल विकास की अवधि के दौरान प्रतिकूल जलवायु होती है। देश में 2004–05 के दौरान 36.6 लाख हैक्टर भूमि में गन्ना उगाया गया जिसका करीब एक चौथाई भाग लवणग्रस्त था। गन्ने की खेती कर रहे किसानों के लिए इस लेख में प्रस्तुत जानकारी लाभदायक हो सकती है।

लवणग्रस्त खेतों की पहचान

लवणग्रस्त मृदायें लवणीय या क्षारीय या दोनों समस्याओं से ग्रसित हो सकती है। खाली पड़े लवणीय खेतों की ऊपरी सतह पर नमक के रवों की सफेद परत चमकती हुई दिखाई देती है जबकि लवणता का स्तर कम होने पर ऐसे लक्षण कम दिखाई देते हैं और केवल मेड़ों पर, असमतल खेत के उठे हुऐ स्थानों या मिट्टी

के ढेलों पर पाये जाते हैं। जबकि क्षारीय भूमि की उपरी सतह मटमैली दिखाई देती है और जब यह खेत सूख जाते हैं तो इनमें गहरी दरारें दिखाई देती हैं। टयूबवैल का जल लवणीय होने पर जल ले जाने वाली खेतों की नालियों की मेड़ों पर सफेद परत दिखाई देने लगती है और इसकी मोटाई एक प्रकार से लवणता के स्तर को दर्शाती है।

मृदा अथवा जल के लवणग्रस्त होने के कारण

किसी क्षेत्र में लवणता का कारण विभिन्न घुलनशील लवणों की अधिकता और उचित जल निकासी का अभाव होना है। अधिक समय तक खराब पानी से सिंचाई करते रहने से भूमि लवणीय हो जाती है। सिंचित क्षेत्रों में जहां भूजल का स्तर ऊँचा हो वहाँ से भी जड़ क्षेत्र में खारापन आ जाता है। तीव्र वाष्पीकरण होने से मृदा की स्तह पर लवण संचित हो जाते हैं। यह लवण सोडियम, कैल्शियम, मैग्नीशियम एवं पोटेशियम के क्लोराईड, सल्फेट, कार्बोनेट एवं बाईकार्बोनेट हो सकते हैं। यदि मृदा में क्लोराईड एवं सल्फेट आयन, सोडियम के साथ होते हैं तो घुलनशील लवण बनते हैं, यह मृदायें लवणीय बन जाती है। कार्बोनेट एवं बाईकार्बोनेट आयनों का, कैल्शियम एवं मैग्नीशियम के साथ मिलकर उन्हें अघुलनशील लवण बनाते हैं, यह आयन, सोडियम के साथ भूमि को क्षारीय बना देता है। वैज्ञानिक परिभाषा के अनुसार अगर मृदा की वैद्युत चालकता 4 डेसीसीमन्स/मीटर से अधिक होती है तो इसे लवणीय कहा जाता है और अगर मृदा का पीएच मान 8.2 और/अथवा विनिमय योग्य सोडियम 15 प्रतिशत से अधिक हो तो इसे क्षारीय कहा जाता है। पानी की ईसी एवं एसएआर दोनों मिलकर ही जल की सिचाई के लिये गुणवत्ता निर्धारित करते हैं।

गन्ने की फसल पर लवणता के प्रभाव

- मृदा लवणता फसल के अंकुरण को धीमा एवं कम करती है। गन्ने में अंकुरण के बाद की अवस्था जब तक कम से कम दो पत्ते पूरी तरह खुलकर दिखाई नहीं देने लगते, लवणता के प्रभावों की दृष्टि से सबसे अधिक नाज़ुक होती है। यह प्रभाव पौधों की जड़ों द्वारा जल को अवशोषण में आने वाली दिक्कत, पौधों के विभिन्न भागों में लवणीय आयनों की अधिकता और कुछ पोषक तत्वों जैसे पोटेशियम की कमी के कारण पैदा होते हैं।

- पत्तों में नमक के आयनों की अधिक मात्रा हो जाने के कारण पीलापन और जलना पत्तों के शिखर से शुरू होकर किनारों के साथ–साथ नीचे की तरफ बढ़ता जाता है। पौधे के पुराने पत्तों पर यह लक्षण पहले दिखाई देते हैं और यह पत्ते समय से पहले पीले पड़ कर अपना सामान्य कार्य करना बंद कर देते हैं जिससे पौधों की वृद्धि की गति धीमी पड़ जाती है।

- मृदा लवणता कल्लों के फुटाव को कम करती है। पौधों की कम बढवार के कारण फसल बौनी नज़र आती है अतः कम अंकुरण और कम कल्लों के कारण खेत खाली दिखता है। उत्पादन में कमी मुख्यः कम पिराई योग्य गन्ने के कारण होती है। मृदा की वैद्युत चालकता करीब 7.5 डेसीसीमन्स/मीटर पर गन्ने की पैदावार में 50 प्रतिशत की कमी आ जाती है।

- लवणता पौधों के पत्तों में प्रकाश संश्लेषण दर को कम ही नहीं करती बल्कि उससे बनने वाले कार्बोहाईड्रेट का वृद्धि में उपयोग भी कम करती है।

- मध्यम लवणता का स्तर प्रायः गन्ने के रस में चीनी की मात्रा को कम करता है और यह प्रभाव पत्तों से गन्ने की पोरियों में चीनी के कम गति से जाने के कारण उत्पन्न होता है।

- यह आवश्यक नहीं कि गन्ने की हर प्रजाति चीनी की मात्रा को कम ही दिखाये क्योंकि गन्ने के रस में चीनी की मात्रा पोरियों की बढवार दर एवं उनके रस में चीनी के आवागमन की पारस्परिक दर पर निर्भर करती है।
- अधिक लवणता का स्तर गन्ने में रेशे की मात्रा को बढ़ाता है और रस में अधिक लवणों के कारण गुड़ बनानें में न केवल असुविघा पैदा करता है बल्कि गुड़ की गुणवत्ता को भी कम करता है।

लवणीय क्षेत्रों में की सफल गन्ने उत्पादन की तकनीकें

- बीज की मात्रा 25 प्रतिशत अधिक प्रयोग करें क्योंकि लवणता गन्ने के जमाव के साथ–साथ कल्लों के फुटाव को भी प्रभावित करती है और सफल उत्पादन में कल्लों की संख्या का विशेष योगदान होता है।
- गन्ने को सामान्य विधि से न बीज कर नालियों में बीजने से काफी अधिक उपज प्राप्त होती है। ऐसा करने से लवण नालियों की मेड़ों पर इकट्ठे होते रहते हैं एवं जड़ों के पास पानी, थोड़ी थोड़ी मात्रा में, अधिक बार लगाने से लवणता का प्रभाव कम पड़ता है ।
- अगर संभव हो तो खारे पानी के साथ अच्छा जल, जैसे नहरी जल, वर्षा ऋतु से पहले बीच–बीच में प्रयोग करने से लाभ होता है।
- इसके साथ–साथ अगर खेत में कार्बनिक खाद 4 से 6 टन प्रति एकड़ की दर से प्रयोग की जाए तो बेहतर फसल प्राप्त की जा सकती है। अगर हर एक या दो वर्ष में ढैंचा की फसल का प्रयोग हरी खाद के रूप में लवणीय भूमियों में किया जाये तो इससे न केवल भूमि की उपजाऊ शक्ति बढ़ती है अपितु इन्हें बंजर होने से भी बचाया जा सकता है। लवणता के बढ़ते स्तर के साथ मृदा में सूक्ष्म जीवाणु संख्या एवं उनकी क्रियाशीलता में कमी आ जाती है ।
- नाइट्रोजन का 25 प्रतिशत अधिक प्रयोग भी सफल सिद्ध हुआ है।
- लवण सहनशील फसलों के साथ फसल चक्र अपनाने से भी लाभ होता है।
- लवण प्रभावित भूमि के लिए गन्ने की सूखा सहिष्णु किस्मों का चयन भी लाभदायक है (तालिका 1)।

तालिका 1: गन्ने की लवण सहनशील प्रजातियाँ

प्रजाति का नाम	अजैविक तनावों से प्रतिक्रिया	संस्थान द्वारा विकसित
को. 95003, को. 93005, को. 97008, को. 85019, को. 99004,को. 2001–13	लवण सहिष्णु	भाकृअनुप–गन्ना प्रजनन संस्थान, कोयंबटूर
को. 8145, को. 88019, को. 94008, को. 99004, को. 2001–13, को. 2001–15, को. 0212, को. 06027	सूखा और लवण सहिष्णु	भाकृअनुप–गन्ना प्रजनन संस्थान, कोयंबटूर
को. 0238, को. 05011	सूखा और लवण सहिष्णु	भाकृअनुप–गन्ना प्रजनन संस्थान, क्षेत्रीय केन्द्र, करनाल
को. 395, को. 453, को. 87263	जल भराव और लवण सहिष्णु	भाकृअनुप–गन्ना प्रजनन संस्थान, कोयंबटूर

बो. 99, बो. 106	सूखा और लवण सहिष्णु	राजेंद्र प्रसाद केन्द्रीय कृषि विश्वविद्यालय, पूसा, बिहार
कोपन्त 97222, कोपन्त 90223	जल भराव और सूखा सहिष्णु	गोविन्द बल्लभ पंत विश्वविद्यालय, पंतनगर
को. 290, को. 86249, को. 94008, डी 109	विभिन्न अजैविक तनाव	भाकृअनुप—गन्ना प्रजनन संस्थान, कोयंबटूर
कोज 96234	विभिन्न अजैविक तनाव	उप्र गन्ना शोध परिषद्, शाहजहाँपुर
कोसी 90063	सूखा और क्षारीय तनाव सहिष्णु	तमिलनाडु कृषि विश्वविद्यालय, कोयंबटूर
कोवी 92102	क्षारीय तनावसहिष्णु	तमिलनाडु कृषि विश्वविद्यालय, कोयंबटूर
कोसी (एससी) 24, टीएनएयू एससी एसआई 7	सूखा और लवण सहिष्णु	तमिलनाडु कृषि विश्वविद्यालय, कोयंबटूर
टीएनएयू एससी एसआई 8	विभिन्न अजैविक तनाव	तमिलनाडु कृषि विश्वविद्यालय, कोयंबटूर

क्षारीयता का प्रभाव एवं सफल गन्ना उत्पादन

क्षारीय भूमि में कम उत्पादकता का मुख्य कारण मृदा के विनिमय स्थलों पर सोडियम का 15 प्रतिशत से अधिक का होना, उच्च पीएच मान (8.2 से अधिक), कैल्शियम तथा ज़िंक की कमी और कहीं—कहीं बोरोन की अधिकता है। मृदा में सोडियम की अधिकता जब कार्बोनेट एवं बाईकार्बोनेट आयनों के साथ होती है तो यह कैल्शियम एवं मैग्नीशियम को मृदा के विनिमययोग्य स्थलों से हटाकर खुद बैठ जाता है। इससे मृदा के स्थगन कण (कोलाइडल पार्टीकल) छितर जाते हैं तथा मृदा के छिद्र बंद होने से उसकी संरचना खराब हो जाती है। ऐसी स्थिति में मृदा में जल परिगमन की गति धीमी हो जाती है और सिंचाई के बाद पौधों को वायु की कमी का सामना अधिक समय तक करना पड़ता है। पौधों को क्षारीय मृदाओं में कैल्शियम की कमी का सामना इसलिये करना पड़ता है क्योंकि कैल्शियम कार्बोनेट पानी में बहुत कम घुलनशील होता है अतः यह जड़मंडल के घोल से अवक्षेपित हो जाता है। कभी—कभी कैल्शियम कार्बोनेट इन मृदाओं में एक कंकरीले कठोर तल का रूप ले लेता है जो मृदा में उपर की एक मीटर गहराई में कहीं से भी शुरू होकर, कितनी ही मोटाई का हो सकता है। यह कंकरीला तल न केवल जड़ों को गहरे जाने से रोकता है बल्कि जल परिगमन की गति को भी कम करता है।

गन्ने की खेती के लिए क्षारीय भूमि का पीएच मान 9.0 या इससे कम होना चाहिए। विनिमयशील सोडियम का लगभग 32 प्रतिशत गन्ने के उत्पादन में 50 प्रतिशत तक कमी ला सकता है। क्षारीय भूमि में जिप्सम की उचित मात्रा के साथ 10 कि.ग्रा. प्रति एकड़ की दर से जिंक सल्फेट गन्ने की रोपाई से पहले डालना चाहिए। कैल्शियम का काम विनिमय सम्मिश्रण के विनिमययोग्य सोडियम को प्रतिस्थापित करना है जिससे न केवल कैल्शियम की प्राप्ति हो सकती है बल्कि मृदा की भौतिक संरचना भी सुधरने लगती है। इससे मृदा का पीएच मान कम हो जाता है जिससे ज़िंक की उपलब्धता भी बढ़ जाती है। क्षारीय भूमि में ज़िंक की कुल मात्रा की कमी नहीं होती बल्कि इसकी उपलब्धता, जो कुल मात्रा का केवल 4 प्रतिशत ही होता है, पौधों की वृद्धि में योगदान करता है। अगर गोबर या अन्य कार्बनिक खाद डाल सकें तो जिप्सम

एवं जिंक सल्फेट का उसमें मिलाना सर्वोतम है। सूक्ष्म जीवों की क्रियाशीलता, जो क्षारीय मृदाओं में कम होती है, कार्बनिक खादों के डालने से बढ़ जाती है और इनसे निकले कुछ कार्बनिक पदार्थ पौधों की जड़ों द्वारा ज़िंक के अवशोषण में अति सहायक होते हैं। जहाँ गन्ने की सिंचाई का पानी क्षारीय (तेलिया) हो, वहाँ गन्ने की रोपाई नालियों में करनी चाहिए। इस पानी के कुप्रभाव को जिप्सम या गन्ने की मली डालकर कम किया जा सकता है। इन सुधारकों की मात्रा पानी की गुणवत्ता पर निर्भर करती है जिसके लिये विशेषज्ञों की सलाह लेनी चाहिए।

अधिक आरएससी वाले पानी के लिये वैज्ञानिक सलाहनुसार जिप्सम की आवश्यक मात्रा मिलाकर ही लगायें। ऐसे पानी वाले टयूबवैल की हौदी में जिप्सम डाल कर उसमें से पानी को गुजारकर ही खेत में लगायें। अधिक आरएससी वाले पानी को खेतों में लगाने से धीरे–धीरे यह खेत क्षारीय बन जाते हैं और इनकी मृदा संरचना पर बुरा प्रभाव पड़ना शुरू हो जाता है, जिससे होने वाले भौतिक परिवर्तन पौधे की बढ़वार को हानि पहुँचाते हैं। गन्ने में 12 आरएससी तक का पानी करीब 50 प्रतिशत तक उपज को कम कर सकता है जोकि उगाई गई किस्म पर निर्भर करता है। जिप्सम की आवश्यक मात्रा मिलाकर इस पानी का उपयोग कुछ किस्मों में आरएससी के असर को पूरी तरह से खत्म कर सकता है। अगर क्षारीय भूमि में जल खड़ा होता है तो पोली बैग विधि से पौध तैयार कर उसे तब रोपित करें जब इन पौधों पर कम से कम दो पूरी तरह से खुली पत्तियां आ जायें। क्षारीय भूमि के लिए गन्ने की किस्म को. 7717 तथा को.एस 767 को सबसे उपयुक्त पाया गया है। अधिक पीएच मान पर गन्ना उगाने से उसमें रेशे का प्रतिशत बढ़ जाता है और गन्ने में रस की मात्रा कम हो जाती है। सोडियम की सांद्रता अधिक होने से गन्ने के रस में सोडियम की मात्रा अधिक हो जाती है तथा पोटेशियम कम हो जाता है। इससे न केवल गुड़ बनानें में असुविघा होती है बल्कि गुड़ की गुणवत्ता में भी कमी आ जाती है ।

समाप्त

खुद करै तौ खेती।, नईं तौ बंजर हेती॥
खेती उनकी कहें, जो हल अपने हांत गहें।

अश्वनी कुमार,* अनीता मान, बाबू लाल मीणा, पूजा[1], चारुलता, अरविन्द कुमार एवं सतीश कुमार सनवाल
भाकृअनुप–केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, करनाल–132001 (हरियाणा)
[1]भाकृअनुप–गन्ना प्रजनन संस्थान, क्षेत्रीय केन्द्र, करनाल–132001 (हरियाणा)
*E-mail: ashwani.kumar1@icar.gov.in

जैव-उपचार(फाइटो-रेमेडिएशन) द्वारा लवणीय मृदाओं का प्रबंधन

वैज्ञानिक शोधों के अनुसार अत्यधिक लवण की मात्रा को जमा करने के लिए हेलोफाइटिक पौधों की क्षमता अक्सर उनके जमीन के ऊपर जैव बायोमास उत्पादन पर निर्भर करती है। इसलिए लवण सहनशील प्रजातियों की खेती लवणीय मृदाओं को बेहतर बनाने का एक प्रभावी तरीका हो सकता है। एक नई तकनीक फाइटो–रेमेडिएशन द्वारा भी लवणीय क्षेत्र में सुधार किया जा सकता है, जोकि पर्यावरण के लिए भी उचित और सुरक्षित है तथा इस तकनीक में जंगली हेलोफाइट्स पौधों के उपयोग द्वारा लवणता को नियंत्रित रखने और कृषि योग्य क्षेत्रों का स्थायित्व बनाए रखने में मदद मिलती है। फाइटो–रेमेडिएशन को एक सुरक्षित और कम लागत वाली पौध आधारित तकनीक के रूप में देखा जाता है जो मिट्टी, पानी और वायु से विभिन्न रसायनों (कार्बनिक और धातु आयनों) को हटाने या बेअसर करने के लिए पौधों की उल्लेखनीय क्षमता पर निर्भर करता है। इन पौधों का महत्व न केवल लवण के उपचार के कारण है, बल्कि अध्ययन से पाया गया है कि हेलोफाइट्स पौधे भोजन, चारा और औद्योगिक कच्चा माल भी प्रदान करते हैं। हेलोफाइटिक पौधों का उपयोग मिट्टी और पानी से खतरनाक अपशिष्ट पदार्थों को दूर करने के लिए भी किया जा सकता है।

जैव–उपचार(फाइटो–रेमेडिएशन): पौधों के द्वारा मिट्टी एवं पानी से विभिन्न रसायनों (कार्बनिक और धातु आयनों) को बाहर निकालने की तकनीक को फाइटोरेमेडिएशन कहा जाता है।

जैव–उपचार (पौध आधारित) एक सुरक्षित और कम लागत वाली प्रभावी तकनीकी है जो कुछ पौधों की उल्लेखनीय क्षमता पर निर्भर करती है। इस तकनीक में मिट्टी, पानी और वायु से विभिन्न अवांछित रसायनों को दूर करके शुद्ध बनाया जाता है। यह तकनीक पर्यावरण अनुकूल, कम लागत वाली, सौंदर्यपूर्ण परिदृश्य गैर–आक्रामक और सामाजिक रूप से स्वीकार्य तकनीक है जिससे पर्यावरण प्रदूषण को कम किया जा सकता है। यह तकनीक संभावित रूप से विभिन्न प्रदूषकों पर लागू होती है, जिनमें भारी धातुएं (तांबा, कैडमियम, जस्ता, मैंगनीज, लोहा, सीसा, मरक्युरी, आर्सेनिक, क्रोमियम, सेलेनियम), रेडियोन्यूक्लाइड, पेट्रोलियम हाइड्रोकार्बन, क्लोरिनेटेड विलायक द्रव, पेंटाक्लोरोफिनॉल (पीसीपी), और पॉलीसाइक्लिक सुगंधित हाइड्रोकार्बन (पीएएच) शामिल हैं और इसमें कई अलग–अलग विधियों को शामिल किया गया है जैसे संचय (फाइटो–एक्सट्रक्शन और राइजो–फिल्टरेशन) या अपव्यय (फाइटो–वोलोटीइलाइजेशन), अपघटन (राइजो–डिग्रेडेशन और जैव–डिग्रेडेशन), गतिहीन बनाना (फाइटो–स्टेबिलाइजेशन) के माध्यम से विभिन्न रसायनों को बाहर करके शुद्ध बनाती है।

फाइटो–रेमेडिएशन एक जैविक सफाई विधि है जिसमें पौधों का इस्तेमाल जैव उपकरण के रूप में मिट्टी और पानी को प्रदूषण रहित बनाने में किया जाता है। पौधे कार्बनिक प्रदूषकों को कम कर सकते हैं और धातु प्रदूषक को अवशोषित कर बाहर निकाल सकते हैं या स्थिर कर सकते हैं। यह विधियों के एक या संयोजन के माध्यम से किया जा सकता हैं।

फाइटो–रेमेडिएशन की निम्न पांच उप–तकनीकें मौजूद हैं:

फाइटो–एक्सट्रक्शन: इसे पौध–संग्रह भी कहा जाता है। इस तकनीक के द्वारा प्रदूषित स्थानों पर मिट्टी को प्रदूषण मुक्त करने के लिए पौधों के ऊपरी हिस्सों में प्रदूषक (धातु) जमा हो जाते हैं।

फाइटो–डिग्रेडेशन: इस प्रक्रिया में पौधे कार्बनिक प्रदूषकों को सीधे अपनी चयापचय गतिविधियों के माध्यम से कम कर सकते हैं।

फाइटो–स्टेबिलाइजेशन: इस तकनीक के द्वारा पौधे सामान्तया भू–क्षरण, निक्षालन या अपवाह को रोककर मिट्टी में प्रदूषक के स्तर को स्थिर कर देते हैं तथा प्रदूषक को कम जैव उपलब्ध रूपों में परिवर्तित कर देते हैं (उदाहरण के लिए, राइजोस्फीयर में वर्षा के माध्यम से)।

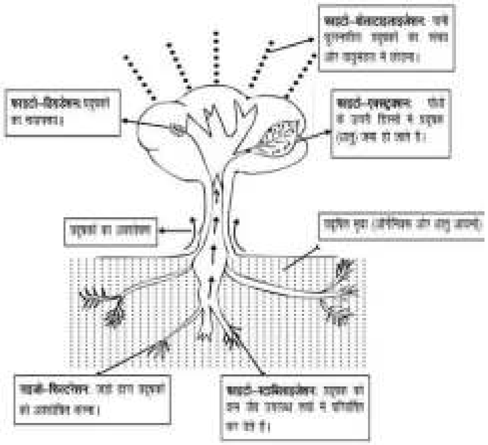

चित्र 1: जैवोपचारण (फाइटो–रेमेडिएशन) का अवलोकन

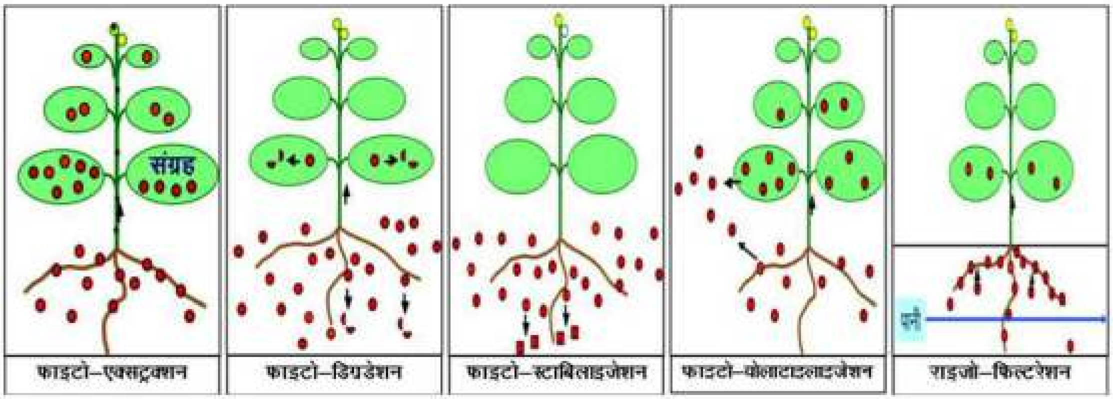

चित्र 2 फाइटो–रेमेडिएशन की उप–तकनीकें

फाइटो–वोलेटिलाइजेशन: जब प्रदूषित पदार्थ (घुलनशील प्रदूषक) पौधों के ऊतकों में संचित हो जाते हैं तब इस तकनीक से पौधे कुछ प्रदूषक (धातु) शीघ्र वाष्पशील या अस्थिर रूप में परिवर्तित करके हटा देते हैं।

राइजो–फिल्टरेशन: इस तकनीक में जड़ या पूरे पौधे का उपयोग होता है। हाइपरक्यूम्युलेटिंग पौधे प्रदूषित धातुओं या जहरीले नमक के आयनों से प्रदूषक को अवशोषित करते हैं।

फाइटो–रेमेडिएशन प्रक्रिया संवहनी पौधों, शैवाल और कवक का उपयोग करके जड़ों में सूक्ष्मजीवों की सहायता से प्रदूषक अपशिष्ट पदार्थों को हटाने या तोड़ने के लिए किया जाता है। फाइटो–रेमेडिएशन प्रदूषक अपशिष्ट प्रबंधन के लिए एक कम लागत वाली पारंपरिक तकनीक है। प्रदूषक अपशिष्ट पदार्थों जैसे धातु, धातुकर्म, अधातु, रेडियोन्यूक्लाइड, लवण, पोषक तत्व, सीवेज और वायु प्रदूषक का फाइटोरेमेडिएशन द्वारा उपचार किया जा सकता है। हेलोफाइटिक पौधों पर किये गए कई अनुसंधानों में पाया गया है कि ये पौधे अपनी जड़ों, तनों तथा पत्तियों में अधिक लवण जमा करके लवणीय मृदाओं का उपचार करते हैं (तालिका 1)।

तालिका 1: हैलोफाइटिक पौधों द्वारा लवणीय मृदाओं के उपचार का विवरण

हैलाफाइटिक	**लवणीय मृदाओं की उपचार की मात्रा**
स्यूडा फ्रुटीकोसा	ताजा वजन के आधार पर 9.06 प्रतिशत नमक का संचय (सोडियम आयन और अन्य लवण)।
स्यूडा मेरिटीमा	चार महीने में 1 हैक्टर लवणग्रस्त भूमि से 504 कि.ग्रा. नमक (सोडियम क्लोराइड) को हटा सकते हैं।
जनकस रीजीडस जनकस अकूट्टस	एक विकास अवधि में मृदा की वैद्युत चालकता 33 से घट कर 22 डेसीसीमन्स/मीटर रह गयी।
स्यूडा सालसा	यह 20 टन/हैक्टर सूखे वजन का उत्पादन करता है जिसमें 3–4 टन नमक होता है।
पोरचुलेका ओलेरेसिया	उच्चतम नमक संचय (497कि.ग्रा./हैक्टर)के साथ 3948 किलो ग्राम/हैक्टर सूखे वजन का उत्पादन
चिनोपोडियम एल्बम	यह 3.25 टन/हैक्टर/वर्ष सूखे बायोमास का उत्पादन जिसमें 569.6 किलो/हैक्टरनमक होता है।
स्यूडा फ्रुटीकोसा, स्यूडा नुडीफ्लोरा, सालसोला बारयोसम, हलोजयलोन रेकरवुं एट्रीप्लेक्स लेंटीफॉर्मिस	इन पौधों को उच्च बायोमास उत्पादन के साथ–साथ सबसे अच्छा नमक संचय करने वाला भी पाया गया। इन पौधों द्वारा 4.9 से 6.1 वर्ष में मृदा की वैद्युत चालकता 16 से घट कर 2 डेसीसीमन्स/मीटर रह गयी।
स्यूडा नुडीफ्लोरा, यूरोकोंड्रा सेटुलोसा, स्पोरोबोल्स मरजिनेट्स एलुरोपस लेगोपोइड्स	इन हैलोफोइट्स के उपयोग द्वारा मृदा पीएच 9 से घटकर 8.35 हो गया।

जैवोपचारण (फाइटो–रेमेडिएशन) के फायदे और सीमाएं

लाभः

- पेड़ और घास के साथ फाइटोरेमेडिएशन एक फायदेमंद तकनीक है क्योंकि इन्हें चारा, लकड़ी और ईंधन के रूप में भी उपयोग किया जा सकता है।
- पौधों की कार्यिकी का आसानी से अध्ययन किया जा सकता है।
- यह तकनीक पर्यावरण अनुकूल, सौंदर्यपूर्ण और सार्वजनिक रूप से स्वीकार्य है।
- फाइटोमाइनिंग की प्रक्रिया मूल्यवान धातुओं के पुनः उपयोग की संभावना को बढ़ाती है।
- कृषि के उपकरण और आपूर्ति का उपयोग करके यह आर्थिक रूप से व्यवहार्य है।
- यह पर्यावरण के लिए कम विघटनकारी है।

- जैवोपचारण खनन से बचाकर, दूषित पदार्थों को फैलाने का जोखिम कम कर देता है।

सीमाएंः

- फाइटो–रेमेडिएशन तकनीक जहाँ तक पौधों की जड़ें फैलती है वहीं तक सीमित है।
- यह एक अधिक समय लेने वाली प्रक्रिया है।
- इस तकनीक में अधिक संचय करने वाले (हाइपरक्यूम्युलेटर) पौधों की जाँच की भी आवश्यकता होती है।
- प्रदूषण की विषाक्तता से पौधे मर भी सकते हैं।
- इस प्रक्रिया में शरद ऋतु के मौसम में दूषित पदार्थों का पुनःचक्रण या तो खाद्य श्रृंखला में प्रवेश करके या पर्यावरण में छोड़ होता है।
- दूषित पदार्थों की अधिक घुलनशीलता या लीचिंग के कारण पर्यावरण क्षति में वृद्धि हो सकती है।

समाप्त

⌘ आदी खेती उनकी कहें, जो नित हल के संग रहें।
बयें बीज उपजै नईं तहां, जो पूंछें कै हर है कहां॥ ⌘

धीरज सिंह[1], मोती लाल मीणा[1], एम.के.चौधरी[1], चन्दन कुमार[1], एच. एस. जाट[2] एवं गजेन्द्र यादव[2]
[1]कृषि विज्ञान केन्द्र, काजरी, पाली–मारवार (राजस्थान)–306401
[2]भाकृअनुप–केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, करनाल–132001

पश्चिम राजस्थान में बेर की वैज्ञानिक खेती से अधिक लाभ कमाना

बेर शुष्क जलवायु वाले देशों का लोकप्रिय फल है। भारत में इसकी बागवानी मुख्य रूप से राजस्थान में की जाती है। गुजरात, उत्तर प्रदेश, हरियाण में छोटे स्तर पर इसके बगीचे देखे जा सकते हैं। इसका फल स्वादिष्ट तथा औषधीय गुणों से भरपूर होता है। भारत में बेर का क्षेत्रफल 98.8 हजार हैक्टर, उत्पादन 660. 7 हजार मीट्रिक टन एवं उत्पादकता 6.69 मीट्रिक टन प्रति हैक्टर (2013–14) है। बेर एक प्रसिद्ध फल है जिसकी खेती राजस्थान में बहुत ही आसानी से की जा सकती है। इसके फलों का प्रयोग ताजे फलों के रूप में खाने, सुखाकर छुआरों के रूप में, शर्बत, जैम, मुरब्बा, केण्डी, चटनी एवं अचार बनाकर किया जाता है। इसके अतिरिकत बेर के पौधे का लाख के कीड़ों को पालने में और इसके पत्तों का प्रयोग पशुओं के चारे के रूप में किया जाता है। इसकी लकड़ी का उपयोग जलाने तथा खेत के चारो ओर बाड़ लगाने में अधिक किया जाता है जिससे फसल को नुकसान होने से बचाया जा सकता हैं। राजस्थान के सूखा प्रभावित क्षेत्रों में जहां चारे व पानी की कमी हो उन क्षेत्रों में इसके पत्तों को सुखाकर भेड़–बकरीयों को चारे के रूप मे खिलाया जाता हैं।

जलवायु

बेर शुष्क जलवायु का पौधा है। यह अर्द्ध शुष्क जलवायु में भी अच्छी तरह उगाया जा सकता है। फलों के विकास एवं पकने के समय गर्म एवं शुष्क जलवायु की आवश्यकता होती है। लम्बे समय तक उच्च तापमान रहने से फलों में मिठास की मात्रा बढ़ती है। आर्द्र जलवायु से फलों की गुणवत्ता प्रभावित होती है एवं फफूंद जनित रोगों का प्रकोप बढ़ जाता है। इसकी खेती समुद्र तल से 500 मीटर से अधिक ऊंचे स्थानों पर की जा सकती है।

मृदा

बेर विभिन्न प्रकार की मृदाओं में उगाया जा सकता है, परन्तु अच्छी जल निकास वाली रेतीली दोमट मिट्टी सर्वोत्तम होती है। फलों की गुणवत्ता एवं रंग भारी मृदाओं की अपेक्षा हल्की मृदाओं में अच्छा होता है। बेर 9.00 डेसी. सीमन/मी. तक मृदा लवणता 9.78 पीएच तक क्षारीयता सहन कर सकता है। बेर की खेती हल्की कंकरली व अनउपजाऊ भूमि पर भी असानी से ऊगाया जा सकता है।

उन्नत किस्में

फल पकने के आधर पर बेर की उन्नत किसमें तीन तरह की होती हैः–

- जल्दी पकने वालीः जनवरी के प्रथम सप्ताह में पकने वाली जैसे–गोला, सलेक्टेड सफेदा, सन्धूरा, नरमा, बनारसी इत्यादी।
- मध्यम अवधी में पकने वालीः जनवरी के अन्तिम सप्ताह में पकने वाली जैसे–सेव, कैथली, सानेर 75, मुडिया, महारा, बनारसी।

- देरी से पकने वाली: फरवरी के अन्त व मार्च के शुरू में पकने वाली जैसे– छुहारा, उमरान, इलायची, जोगिया तथा अलीगंज इत्यादी।

सेब

इस किस्म में फलों का औसत वजन 14 ग्राम, घुलनशील ठोस पदार्थ 20.7 प्रतिशत, अम्ल 0.44 प्रतिशत, विटामिन सी 85 मिली ग्राम, औसत पैदावार 80 किलों प्रति पेड़ होती है।

गोला

इस किस्म के फल चमकदार तथा गोल, फलों का औसत वजन 14.6 ग्राम, घुलनशील ठोस पदार्थ 17.4 प्रतिशत, अम्ल 0.46 प्रतिशत, विटामिन सी 85.5 मिली ग्राम प्रति 100 ग्राम, उपज लगभग 85 किलो प्रति पेड़ तथा फल जनवरी के पहले सप्ताह में पकना प्रारम्भ हो जाते हैं।

मुण्डिया

इस किस्म के फल बड़े, फलों का औसत भार 35 ग्राम, छिलका मोटा व कठोर, घुलनशील ठोस पदार्थ 19.5 प्रतिशत, अम्ल 9.33 प्रतिशत, विटामिन सी 89 मिली ग्राम, उपज लगभग 75–80 किलो प्रति पेड़ होती हैं।

ईलायची

इस किस्म के फल आकार में छोटे व अधिक मिठे होते हैं। फलों का औसत भार 25 से 30 ग्राम का होता है, फल देर से पकते हैं। इसमें फल मक्खी का प्रकोप नही होता क्योंकि इसके फलों का छिलका मोटा व कठोर होता हैं। इसकी उपज 50 कि.ग्रा. प्रति पौधा होती हैं।

उमरान

इस किस्म के फल आकार में बड़े व आगे से लम्बें होते हैं। फल खाने में हल्का खट्टापन लिये होते हैं। फलों का औसत भार 40 से 50 ग्राम का होता है, फल देर से पकते हैं। इसमें फल मक्खी का प्रकोप कम होता हैं। इसकी उपज 55–75 कि.ग्रा. प्रति पौधा होती हैं।

बेर का पौधा लगाने की उपयुक्त विधि

बेर लम्बे समय तक फल देने वाला वृक्ष है अतः इसका बगीचा लगाने के लिये विशेषज्ञ से सलाह लेकर योजनाबद्ध ढ़ंग से बगीचा लगाये। रबी की फसल लेने के बाद एक गहरी जुताई मिट्टी पलटने वाले हल से करें इसके बाद दो–तीन जुताई कल्टीवेटर से करने के बाद खेत को समतल कर लेना चाहिए। बेर बगीचा लगाने के लिये वर्गाकार विधि सर्वाधिक उपयुक्त व संतोशजनक रहती है जिसमें पौधे से पौधे की दूरी तथा पंक्ति (लाइन) से पंक्ति की दूरी बराबर रखते हैं। बेर बगीचे के लिए पौधे से पौधे तथा पंक्ति से पंक्ति की दूरी, दोनों ही 6–6 मीटर रखते हुए खुटियाँ गाड़कर रेखांकन कर लेते हैं। इस तरह से एक बीघा में 44 व एक हैक्टर में 278 पौधे लगते है।

बेर का बगीचा लगाने के लिए गड्ढों का आकार व गड्ढे भरने की विधि

बेर का बगीचा लगाने के लिये गर्मी के दिनों में रेखांकन किए हुए खेत में 1 मीटर चौड़ा X 1 मीटर लम्बा X 1 मीटर गहरा, आकार के गड्ढ़े खोदते हैं और उन्हें खुला छोड़ देते हैं। जिससे तेज धूप के कारण जमीन में पाये जाने वाले हानिकारक कीड़े–मकोड़े नष्ट हो जाते है या चिड़ियों द्वारा चुन लिए जाते हैं। गड्ढों को मानसून आने से पहले भर देना चाहिए। एक गड्ढ़े से खोदी गई ऊपर की 45 सेन्टीमीटर (डेढ़ फीट)

गहराई तक की मिट्टी तथा 20–25 किलोग्राम गोबर की सड़ी हुई खाद, 50–100 ग्राम क्विनॉलफॉस या कार्बोफ्यूरॉन पाउडर प्रति पौधा डालना चाहिए।

बेर में सिंचाई प्रबंधन

बेर की फसल में अधिक पानी की आवश्यकता नही होती है परन्तु पौधों की प्रारम्भिक अवस्था में स्थापित करने के लिए सिंचाई करना आवश्यक है। बेर के पौधे गर्मियों में सुशुप्तावस्था में चले जाते हैं और पत्तियां गिरा देते हैं अतः गर्मियों में सिंचाई करने की जरूरत नही पड़ती। मानसून की वर्षा का अधिकतम फायदा लेने के लिए बेर के पेड़ों के चारों तरफ दो मीटर व्यास के गोलाकार थांवले गर्मियों में बनाकर तैयार कर लेने चाहिए। इससे पौधों की बहुत अच्छी बढ़वार होती हैं। मानसून में अच्छी बढ़वार के बाद पहली सिंचाई की जरूरत फूल आने से पहले करनी पड़ती है। दूसरी सिंचाई फल बनते समय करें। नवम्बर के महीने में फल विकसित होते समय खेत में नमी होना अति आवश्यक है। सिंचाई जल की प्रचुर मात्रा में उपलब्धता हो तो नवम्बर से जनवरी तक 10–15 दिन के अन्तराल पर सिंचाई करने से फलों की गुणवत्ता व उपज पर अच्छा प्रभाव पड़ता हैं।

बेर मे कटाई–छंटाई

बेर में कटाई–छंटाई करना बहुत ही जरूरी है क्योंकि फूल नई पत्तियों के अक्ष से निकलते हैं कटाई करने के बाद बहुत सी शाखएं/प्ररोह निकलते हैं जिन पर पत्तियां निकलती हैं और उसी अनुसार फूल भी अधिक लगते हैं। बेर में कटाई–छटाई का उपयुक्त समय 15 मई से 15 जून तक रहता हैं। बगीचे के पहले दो–तीन साल तक पौधों को सही आकार देने के लिए हल्की कटाई–छंटाई करते हैं। यानी केवल रोगग्रस्त, सूखी टहनियों को ही काटते हैं। इस दौरान मुख्य शाखा पर जमीन से एक मीटर की ऊँचाई तक की प्राथमिक शाखाओं को बढ़ने देते हैं। शाखाओं के बीच में दूरी रखने के लिए कुछ शाखाओं को काट–छांट कर हटा देते हैं जिससे वायु व धूप का प्रवेश आसानी से हो सके। चार–पाँच साल के बाद पौधें की जमीन से एक मीटर तक की मुख्य शाखा व चार–पांच द्वितीय शाखाओं को छोड़कर पूरी तरह से कटाई करते है और बाद में कटे हुए सिरे पर ब्लाइटोक्स नामक फफूंदीनाशक दवा का लेप लगा देते हैं जिससे फफूंदीजनक बीमारियों का प्रकोप पौधों पर न हो। इसके बाद उद्यान की गहरी जुताई करके छोड़ देते हैं।

खाद एवं उर्वरक

साधारण तौर पर नये प्ररोहों के निकलते समय, फूल आते समय और फलों की वृद्धि के समय पर्याप्त मात्रा में खाद व उर्वरक देने चाहिए।

सारणी 1 बेर में खाद व उर्वरकों की मात्रा

पेड़ की आयु वर्ष में (कि.ग्रा.)	गोबर की खाद (कि.ग्रा.)	यूरिया (कि.ग्रा.)	सुपर फॉस्फेट (कि.ग्रा.)	म्यूरेट ऑफ पोटाश (कि.ग्रा.)
1	10	0.22	0.35	0.08
2	20	0.44	0.70	0.16
3	20	1.10	1.40	0.20
4	25	1.20	1.75	0.25
5 एवं बाद में	30	1.20	1.75	1.25

यूरिया की आधी मात्रा और सुपर फास्फेट एवं म्यूरेट ऑफ पोटाश की पूरी मात्रा जुलाई एवं बाकी बची हुई यूरिया की आधी मात्रा नवम्बर माह में देनी चाहिए। खाद व उर्वरक देने के तुरन्त बाद सिंचाई कर देनी चाहिए।

बेर की फसल में लगने वाले प्रमुख कीट

फल मक्खी

यह बेर का सबसे हानिकारक कीट हैं। जब फल छोटे व हरे रहते हैं तब कीट का आक्रमण शुरू होता हैं शुरू में फल में एक लट (मैंगट) पाई जाती है। इसके प्रभाव से फल काणें हो जाते हैं। जो खाने योग्य नही रहते व बाजार में कम भाव पर बिकते हैं। आक्रमण से बीज के चारों ओर एक खाली स्थान हो जाता है तथा लटे अन्दर से पूरा फल खाने के बाद बाहर आ जाती है। इसके बाद यह मिट्टी में प्युपा रूप में छिपा रहता है कुछ दिन बाद इससे मक्खियां बनकर तैयार हो जाती हैं तथा इनका आक्रमण फलों पर पुनः शुरू हो जाता है।

फल मक्खी का नियंत्रण

नियंत्रण हेतु बाग के आस–पास के क्षेत्र से बेर की जंगली झाड़ियों को हटा देवें। प्रभावित फलों को इक्ट्ठा करके नष्ट कर देवें। मई–जून में बाग की मिट्टी को पलटते रहना चाहिए जिससे कीट के लट नष्ट हो जायें। बेर के पौधे में पहला छिड़काव फूल आते समय तथा दूसरा जिस समय फल मटर के दाने के आकार के बनने लगे उस समय डाईमैथोएट 30 ई.सी. 1 मिली. प्रति लीटर पानी के हिसाब से करना चाहिए। तीसरा छिड़काव इसके 15 से 20 दिन बाद करना चाहिए।

चैफर बीटल

यह एक हानिकारक कीट है। इसका प्रकोप जून–जूलाई में अधिक होता हैं यह पेड़ों की नई पत्तियों एवं प्ररोहों को खाता है। वर्षा शुरू होते ही इसका आक्रमण शुरू हो जाता है।

नियंत्रण

नियंत्रण हेतु जून माह में पहली वर्षा के तुरन्त बाद कार्बोरिल 50 डब्ल्यू. पी. 4 ग्राम प्रति लीटर पानी के हिसाब से पेड़ों पर ठीक तरह से छिड़काव करना चाहिए।

छाल भक्षक कीट

यह कीट पेड़ के छाल को खाता है तथा छिपने के लिए अन्दर डाली में गहराई तक सुरंग बना लेता हैं। जिससे कभी–कभी डाल/शाखा कमजोर हो जाती है।

नियंत्रण

नियंत्रण हेतु सूखी शाखाओं को काट देना चाहिए। कार्वेल 50 डब्ल्यू.पी. 35 ई.सी. 2 ग्राम प्रति लीटर पानी का घोल बनाकर शाखाओं तथा डालियों पर छिड़काव करें, साथ ही सुरंग को साफ करके पिचकारी की सहायता से केरोसिन 3 से 5 मिली लीटर प्रति सुरंग डाले या उसका फाहा बनाकर सुरंग के अन्दर रख देवें और बहार से गीली मिट्टी से बन्द करें। समन्वित कीट नियंत्रण विधि में बेर के थवलों में मिट्टी खोदकर उनमें प्रति थाला क्यूनॉलफॉस (1.5 प्रतिशत) चूर्ण मिलाने से वर्षा प्रारम्भ होने पर डायमिथोएट 30 ई.सी. 0.2 प्रतिशत घोल का छिड़काव कर, साथ ही जब बेर मटर के दाने जैसा हो जाये

तो तीन छिड़काव 15–20 दिन के अन्तराल पर करने से बेर के बगीचे में पूर्ण कीट नियंत्रण किया जा सकता है।

बेर मे लगने वाली प्रमुख व्याधियां

छाछ्या (पाउडरी मिल्ड्यू या चूर्णी फफूंद)

इस रोग का प्रकोप सर्दी में अक्टूबर में दिखाई पड़ता है इससे बेर की टहनियां, पत्तियां एवं फल सफेद कवक आवरण से ढक जाते हैं। प्रभावित पत्तियों एवं फलों की वृद्धि रूक जाती है और फल गिर जाते है।

नियंत्रण

नियंत्रण के लिये कैराथेन एल सी 0.1 प्रतिशत या घुलनशील गंधक 0.2 प्रतिशत के तीन छिड़काव, प्रथम अक्टूबर में फूल आने से पहले और दूसरा 15–20 दिन के अन्तराल पर करने चाहिए। बेर की सेव किस्म रोग से सहनशील है।

जड़ गलन

इस रोग का पौधों की जड़ों तथा भूमि के पास वाले तने के भाग पर आक्रमण होता है। रोगी पौधे सूख जाते हैं।

नियंत्रण

नियंत्रण हेतु केप्टान 2 ग्राम प्रति लीटर पानी के घोल से भूमि को उपचारित करना चाहिए।

कजली फफूंद (सूटी मोल्ड)

रोग के लक्षण अक्टूबर माह में दिखाई देने लगते हैं। रोगग्रसित पत्तियों की नीचे की सतह पर कहीं–कहीं पर काले धब्बे दिखाई देने लगते है जो बाद में पूरी सतह पर फैल जाते हैं और पत्ती, कजली (कालिख) की तरह दिखाई देने लगती हैं तथा रोगी पत्तियां पेड़ों से गिर जाती है।

नियंत्रण

नियंत्रण हेतु रोग के लक्षण दिखाई देते ही मैन्कोजेब तीन ग्राम व कॉपर ऑक्सीक्लोराइड 3 ग्राम का प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर पेड़ों पर छिड़काव करें एवं आवश्यकता पड़ने पर उपचार 15 दिन के अन्तर पर पुनः दोहरावें।

पत्ती धब्बा/झुलसा रोग

इस रोग के लक्षण नवम्बर माह में दिखाई देने लगते हैं यह रोग एक प्रकार की फफूंद आल्टरनेरिया द्वारा फैलता है। रोगी पत्तियों पर छोटे–छोटे भूरे रंग के धब्बे बनते हैं तथा बाद में यह धब्बे आकार में बढ़कर पूरी पत्ति पर फैल जाते है। पत्तियां सूखकर गिरने लग जाती हैं।

नियंत्रण

नियंत्रण हेतु रोग दिखाई देते ही मैन्कोजेब 3 ग्राम दवा प्रति लीटर पानी के हिसाब से दो तीन छिड़काव 15 दिन के अन्तराल पर करना चाहिए।

फूल तथा फल बनना

बेर में हर साल फूल नये प्ररोह पर आते हैं। उत्तरी भारत में बेर जनवरी से मार्च तक मिलते हैं। बेर का पेड़

चार साल बाद पर्याप्त मात्रा में फल देने लगता हैं। जब पौधें पूर्ण विकसित हो जाये तो उनमें खाद व पानी की मात्रा का अवश्य ध्यान रखना चाहिए।

उपज

बेर की उपज औसतन 60 से 80 किलोग्राम प्रति पौधा होती हैं।

बेर के फलों सें लाभ–लागत

बेर के फलों को उचित समय पर तुड़ाई करके उन्हे बाजार में बेचनें के लिए भेज देना चाहिए। फलों को साफ व श्रेणिकरण करके बेचने पर अधिक लाभ कमाया जा सकता है। इससे एक हैक्टर में लगभग 240740 रुपयें का शुद्ध लाभ कमाया जा सकता है। यदि फलों से चटनी, जूस व सुखा कर बचने पर अतिरिक्त लाभ कमाया जा सकता है।

सारणी 1 एक हैक्टर में बेर का बगीचा स्थापित करने की लागत व लाभ (रुपये) आंकलित प्रति हैक्टर 278 पौधों पर होने वाला खर्चा (रुपये)

क्र.स.	विवरण	प्रथम वर्ष	द्वितीय वर्ष	तृतीय वर्ष	कुल
अ	**लागत व्यय**				
1	भूमि की तैयारी	1800	–	–	1800
2	गड्डों की खुदाई व भराई (278 गड्डें, 25 रु./गड्डा)	6950	–	–	6950
3	रोपण सामग्री (278 पौधें, 20रु. /प्रति पौधा)	5560	–	–	5560
4	खाद व उर्वरक	2000	2500	3000	7500
5	पौध संरक्षण	3500	3500	5000	12000
6	सिंचाई	2000	4000	4000	10000
7	अन्तःकर्षण क्रियायें	12050	15500	16500	44050
8	अन्य व्यय (जैसे कटाई–छटाई)	1000	2000	2000	5000
9	**कुल लागत**	34860	27500	30500	92860
ब	**बेर की फसल से उपज एवं आय/हैक्टर**	**चौथें वर्ष**	**पांचवें वर्ष**	**छटवें वर्ष**	**सातवें वर्ष एवं आगे के वर्ष**
1	फल प्रति पौध (कि.ग्रा.)	25	35	55	60
2	फल कि.ग्रा. प्रति हैक्टर	6950	9730	15290	16680
3	कुल आय (औसतन 15 रु. प्रति कि.ग्रा.)	139000	194600	305800	333600
4	शुद्ध आय रुपये	104140	167100	275300	240740

बेर में कलिकायन द्वारा नये पौधे

फलों से लदा बेर का पौधा

बेर का उचित श्रेणीकरण कर बेचना

समाप्त

धीरज सिंह[1], मोती लाल मीणा[1], एम.के.चौधरी[1], चन्दन कुमार[1], गजेन्द्र यादव[2] एवं एच. एस. जाट[2]
[1] कृषि विज्ञान केन्द्र, काजरी, पाली–मारवार (राजस्थान)
[2] भाकृअनुप–केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, करनाल–132001

मरू क्षेत्र में बहुउपयोगी गून्दे की वैज्ञानिक खेती

गून्दा या लसोड़ा बारेजिनेसी कुल का पौधा है जो मध्यम आकार का फल वृक्ष है। यह फल वृक्ष समस्त शुष्क व अर्द्वशुष्क क्षेत्रों में जहां पानी की कमी हो वहां यह आसानी से उगाया जाता हैं। इसकों खेतों में वायुरोधक के रुप में, गलियों में व सार्वजनिक उद्यानों में देखा जा सकता हैं। यह कम पानी व उर्वरक वाली जमीन में भी पनपता है। राजस्थान के जोधपुर, जालोर, पाली, बारमेर, सिरोही, अजमेर व नागोर आदि जिलों में बहुतायत लगाया जाता है। अगर इसे खेत के चारों ओर वायुरोधक के रुप में लगाया जाए तो गर्मी में लू सें तथा सर्दी में शीत लहर से फसलों की रक्षा करता हैं। यह एक बहुवर्षीय तथा बहुउपयोगी पेड़ है जिसके कच्चे फल सब्जी व आचार बनाने के उपयोग में आते हैं। फलों के अलावा इसके पत्ते पशुओं के चारे के रुप में, लकड़ी कृषि उपकरणों के हत्थें इत्यादि बनाने में काम आते हैं। इसमें औषधीय गुणों की विद्यमानता के कारण इसके फल मूत्र विकार तथा अन्य रोगों में उपयोगी माने गए है। इसकी पत्तियां मल्च व खरपतवार नियत्रंण के काम में भी ली जाती हैं।

इसका पूर्णतया पका फल मीठा होता है, तथा ग्रमीण क्षेत्रों में इसे खाया भी जाता है लेकिन इसके गूदे में लसलसा (गोंद जैसा पदार्थ) अधिक होने के कारण यह फल के रुप में प्रचलित नहीं है। बाजार में कच्चे फल जो सब्जी व आचार बनाने के काम आते है, काफी ऊँची दर पर बेचे जाते हैं। इसके फलों को तुड़ाई उपरान्त भण्डारण की भी कोई समस्या नहीं है, क्योंकि अतिरिक्त फलों को अचार बनाकर या सुखाकर भविष्य के लिए आसानी से परिरक्षित किया जा सकता है।

गून्दा के फल में विद्यमान पोषक तत्व

मानव आहार में गून्दा के फल बहुत ही लाभकारी होते है। पोषण की दृष्टि से गून्दा के फलों में पाये जाने वाले तत्व जैसे–प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, वसा, कैल्शियम, फॉसफोरस, लोह तत्व व ऊर्जा प्रचुर मात्रा में पाये

सारणी 1 गून्दा के फल में पाये जाने वाले पोषक तत्व व मात्रा

क.स.	पोषक तत्वों का नाम		मात्रा/इकाई
1	प्रोटीन		2.0 प्रतिशत
2	कार्बोहाइड्रेट्स		92.0 प्रतिशत
3	वसा		2.0 प्रतिशत
4	रेशा		2.0 प्रतिशत
5	विटामिन ए.		–
6	विटामिन बी–2		–
7	विटामिन सी		–
8	कैल्शियम		55.0 मि.ग्रा./100ग्रा.
9	फॉस्फोरस		275.0 मि.ग्रा./100ग्रा.
10	लौहा		6.0 मि.ग्रा./100ग्रा.
11	ऊर्जा		394.0 मि.ग्रा./100ग्रा.

जातें है। गून्दा की छाल पशुओं के मोच पर लगाने पर पशु को आराम मिलता है। गून्दा के पौधे की जड़ों को गर्म पानी में उबाल कर बछड़े–बछड़ियों को पिलाने पर पेट के कीड़े मर जाते है। गून्दा के फलों में पोषक तत्वों की उपलब्धता इस प्रकार है।

किस्में व प्रकार

सामानयतः प्रकृति में दो तरह के गून्दे होते है जिनका विवरण निम्न प्रकार हैः

जगंली या छोटे फल वाला गून्दा

इसके पत्ते तथा फल अपेक्षाकृत छोटे होते है। एक फल का वजन 3–4 ग्राम होता है जिसमे लगभग 50 प्रतिशत गुठली तथा 50 प्रतिशत गूदा होता है। इसके फलों की बाजार में कोई कीमत नहीं मिलती है क्योंकि गूदा (खाने योग्य भाग) कम होता है। इसके पत्ते भेड़ व बकरियों के चारे के रुप में अधिक प्रयोग किया जाता हैं। चूँकि इसके बीजों का अंकुरण अच्छा होता है। (40–60 प्रतिशत) इसलिए इसको बड़े फल वाले गून्दों के लिये रुट स्टॉक के उपयोग में ला सकतें हैं।

बड़े फल वाले गून्दे

इसके पत्तें तथा फल जंगली गून्दे सें लगभग दो गुने बड़े होते है, एक फल का वनज 6–10 ग्राम तथा खाने योग्य भाग 80–90 प्रतिशत तक होता है। इसके बीजों का अंकुरण 20–40 प्रतिशत तक होता है। इसलिए अगर व्यवसायिक तौर पर गून्दे लगाने हो तो बड़े फल वाले गून्दों को ही लगाना वाहिए। इन गून्दों का बाजार में भाव 50 से 60 रुपयें प्रति कि.ग्रा. तक होता है।

एकत्रित जीव द्रव्य का अवलोकन

काजरी मे गत दस वर्षों से राजस्थान के विभिन्न भागों सें सर्वेक्षण कर बड़े फल वालें गूंदो को बीज तथा कलिका द्वारा एकत्रित कर इनकी उत्पादन क्षमता का अवलोकन किया गया। विभिन्न स्थानों से एकत्रित किये गये जीव द्रव्य में फल उत्पादन क्षमता में काफी विभिन्नता पाई गई। अच्छा उत्पादन देने वाले जीव द्रव्य को वानस्पतिक प्रसारण (कलिकायन) विधि से और अधिक पौधे तैयार करके गहन मुल्यांकन किया जा रहा है ताकि निरन्तर अच्छा उत्पादन देनें वाली किस्मों का विकास कर किसानों को उपलब्ध करा सके और उनकी आय मे वृद्वि कर जीवन स्तर बढा सकें।

गून्दे के पौधें तैयार करना

गून्दे का प्रवर्धन बीज द्वारा तथा कलिकायन विधि से किया जा सकता है। बीज द्वारा पौधें तैयार करने के लिये बड़े फल वाले गून्दे, जिसकी उपज अच्छी हो, से पूर्ण पके हुए फल इकट्ठे कर लेने चाहिए। पके हुए फलों में से गुठली निकाल ले। चूँकि गुठली के चारो तरफ बहुत सारा लसलसा गुदा होता है इसलिए इसके बालू मिट्टी में रगड़ कर गुठली को साफ कर ले तथा एक–दो दिन धूप में सुखा देना चाहिए। इसके बाद इन्हे पहले से खाद मिट्टी के मिश्रण से भरी हुई पोलीथीन की थैलियों में लगा देना चाहिए। बीज को करीब एक इंच गहरा बो कर तुरन्त सिंचाई कर देना चाहिए। कलिकायन विधि से पौधे तैयार करने के लिए उपरोक्त विधि से जंगली पौधों से बीज अलग करे तथा उन्हे जून के महीने मे पॉलिथिन थैलियों में बो देना चाहिए। जब ये पौधे दो महीने के हो जाए तब उन पर बड़े फल वाले गून्दो के पेड़ जिसकी उत्पादन क्षमता अच्छी हो, से कलिका लेकर टी या ढाल विधि से अगस्त–सितम्बर में उस पर चढा देना चाहिए।

पौध लगाना

गून्दें के पौधे जुलाई–सितम्बर में लगाने चाहिए क्योकि उस समय तक उसी वर्ष में मई–जून में बोये गए बीजों के पौधे रोपाई योग्य हो जाते है। कलिकायन विधि से तैयार पौधो को भी सितम्बर में लगा सकते है। पौधो व कतारों के बीच की दूरी 6 मीटर रखकर वर्गाकार विधि से क्षेत्र का रेखांकन कर लेना चाहिए। निर्धारित स्थान पर खूंटिया गाड़ कर 2x2x2 फीट आकार के गड्ढे खोदकर तैयार कर लेना चाहिए। यह कार्य मई–जून में करना चाहिये। खोदे गए गड्ढों की ऊपरी मिट्टी में 15 किलो गोबर की सड़ी खाद या कम्पोस्ट मिलाकर पुनः भर देना चाहिए। अगर दीमक की आशंका हो तो मिट्टी व खाद के मिश्रण में 100 ग्राम क्यूनालफॉस (1–5 प्रतिशत चूर्ण) दवा भी मिला देनी चाहिए। गड्ढों की वापिस भराई के पश्चात् सभी गड्ढों के केन्द्र बिन्दु पर लकड़ी या लोहे की खूंटी गाड़ दे ताकि पौधे लगाने का केन्द्र बिन्दू ध्यान में रहें। जूलाई–अगस्त में एक दो वर्षा होनें के बाद इसमें पौधों की रोपाई कर नियमित सिंचाई करते रहना चाहिए।

छंटाई व कटाई

गून्दे में फल व फूल पिछले वर्ष की शाखाओं पर ही लगते है इसलिए इसमे प्रतिवर्ष नियमित कटाई की जरुरत नहीं पड़ती है। परन्तु शुरू के दो सालों में मजबूत शाखाओं की संतुलित वृद्धि के लिए छटाई करना आवश्यक होता है। छंटाई करते समय एक दूसरे से ऊपर से गुजरने वाली तथा नीचे की ओर झुकी हुई शाखाओं को धारदार सिकेटियर से कटाई कर देनी चाहिए। इसी तरह सूखी हुई टहनियाँ तथा रोगग्रस्त शाखाओं को समय–समय पर काटते रहना चाहिए।

सिंचाई

पौधों की रोपाई के प्रथम दो वर्षों में नियमित रुप से सर्दियों में 15 दिन तथा गर्मियों में 7–10 दिन के अन्तर पर सिंचाई करनी चाहिए। जब पौधे 3–4 वर्ष के हो जाए तब उनमे फलन साधारणतया शुरु हो जाता है। इस समय सिंचाई का उचित प्रबंधन अतिआवश्यक है। बड़े पेड़ो में नवम्बर से जनवरी तक सिंचाई बन्द कर देने से पत्तें पीले पड़ कर गिरने लगते है लेकिन प्राकृतिक रुप से सभी पत्ते एक साथ नहीं गिरते है इसलिए जनवरी के अन्तिम सप्ताह में पेड़ों से सभी पत्तें हाथ से तोड़ देने चाहिए। ऐसा करने से फूल व फल जल्दी व एक साथ आतें है। पत्तें तोड़ने के बाद फरवरी के दूसरे सप्ताह में देशी खाद या कम्पोस्ट (10–15 किलोग्राम प्रति पेड़) डाल कर अच्छी तरह 6 इंच गहरा खोद कर मिट्टी में मिलाकर सिंचाई शुरु कर देनी चाहिए। जैसे ही तापमान बढने लगता है नई बढवार व फूल एक साथ शुरु हो जाते हैं। इस दौरान हल्की सिंचाई 7–10 दिन के अन्तराल पर जारी रखें।

खाद एवं उर्वरक

गून्दे में खाद व उर्वरको की मात्रा पर ज्यादा अनुसंधान नहीं हुआ है फिर भी अच्छी वानस्पतिक बढवार के लिए प्रतिवर्ष 15–20 किलो गोबर की सड़ी खाद जुलाई–अगस्त में तथा पुनः 10–15 किलो कम्पोस्ट या वर्मी–कम्पोस्ट फल लगने से पहले फरवरी के महीने में देने से भरपूर फलो की पैदावार होती है। जहाँ तक रासायनिक उर्वरकों का सवाल है 100–200 ग्राम नत्रजन, फास्फोरस व पोटाश प्रति पौधा प्रति वर्श भूमि की उर्वरता के अनुसार वर्शा ऋतु में देने से फलों की उपज व गुणवत्ता में इजाफा होता है।

रोग व कीट

गून्दे में रोग व कीट से ज्यादा नुकसान नहीं होता हैं। पौधो की शाखाओं से गोंद जैसा तरल पदार्थ निकलता है। कई बार यह तरल पदार्थ नीचे बहता हुआ दिखाई देता है। यह गोंद प्रायः शाखाओं में सूख कर पोषक तत्वों व पानी के बहाव को रोक देता है जिससे कि ऊपर की शाखाएँ सूखने लगती है। इस बीमारी के कारण व निवारण पर अभी तक कोई ठोस जानकारी उपलब्ध नहीं हैं। फिर भी सूखी हुई शाखाओं को काट कर शाखाओं पर जमें हुए गोंद को चाकू की सहायता से खुरच कर कॉपर ऑक्सीक्लोराइड या बोर्डो पेस्ट का लेप करके कुछ हद तक नुकसान को कम कर सकते है। फरवरी–मार्च में जब पौधों की नई बढवार शुरु होती हैं तब मोयला, तथा अन्य रस चूसने वाले कीटों का आक्रमण प्रायः देखा गया हैं। इनके नियन्त्रण के लिए मोनोक्रोटोफॉस 1 मिली प्रतिलीटर पानी में घोल बनाकर दो–तीन छीड़काव 10–15 दिन के अन्तर पर करना चाहिए।

फूल व फलों का गिरना

फरवरी के दूसरे व तीसरे सप्ताह में जब फूलन व फलन शुरु होता हैं तो कई बार तापमान अचानक बढ़ जाता हैं या फिर गर्म हवा चलने लग जाती है ऐसी स्थिति में फूल व फल अत्यधिक मात्रा में गिरने लगतें है। इसको कम करने के लिए बगिचें में नमी बनाएँ रखें, हो सके तो कभी–कभी पानी से पौधों पर छिड़काव भी कर सकते है। इसके अलावा प्लानोफिक्स 5 मिली दवा 15 लीटर पानी में मिलाकर फूलों व फलों पर छिड़काव करके भी नुकसान कम किया जा सकता है। अगर संभव हो तो फूल व फल लगतें समय (फरवरी–मार्च) में 25 प्रतिशत ग्रीन शेडिंग नेट से पौधें पर छाया करने से भी फायदा हो सकता है।

फलों की तुड़ाई व उपज

बढवार कर चुके फलों के गुच्छो को हरी अवस्था में ही तोड़ना चाहिए। फलों की तुड़ाई मध्य मार्च से मध्य मई तक चालू रहती है। इसके पश्चात् फल पक कर पीलें पड़ने लगते है जो कि सब्जी या अचार के लिये उपयुक्त नहीं रहते हैं क्योंकि वे लिसलिसे तथा मिठास लिए हुए होते है। फलों को हमेशा गुच्छों में ही तोड़ना चाहिए ताकि तुड़ाई पश्चात काफी समय तथा ताजे बने रहे। उत्तम प्रबंधन कर पेड़ से औसतन 20–50 किग्रा. फल प्राप्त किये जा सकते है। अलग–अलग वर्षों में इसका उत्पादन कम या ज्यादा होता रहता है इसका निर्धारण मुख्य रुप से किस्म तथा फूल आने तथा फल बनते समय मौसम की स्थिति पर निर्भर करता है। काजरी में किये गये अनुसंधान के आधार पर यह पाया गया हैं कि केवल कुछ माह के लिए पूरक सिंचाई की व्यवस्था करके इससे 20–50 किलो फल प्रति वृक्ष प्राप्त कर सकतें है।

तुड़ाई उपरान्त प्रबंधन

फलो की तुड़ाई सुबह के समय ही करनी चाहिए। फल तोड़ने के तुरन्त बाद ठण्डे पानी (3–4^{0} से. तापमान) में पाँच मिनट तक डुबोकर निकालने से फलो से गर्मी निकल जाती है जिससे ये तुड़ाई उपरान्त अधिक समय तक ताजे बने रहतें हैं।

आचार बनाना

गून्दे के फलों से अचार बनाना बहुत आसान है। सर्व प्रथम फलों के गुच्छो को साफ पानी में धोकर हल्के मुलायम होने तक पानी में उबाल लेना चाहिए। पानी से बहार निकाल कर हवा में सुखाकर डण्ठल अलग कर लेना चाहिए। अब फलों का वजन कर लेना चाहिए। कुल वजन का एक चौथाई केरी (कच्चे आम) के टुकड़े भी इसमें मिला देना चाहिए। अब इसमें अचार बनाने का मसाला तेल में हल्का भून कर इसमें अच्छी

तरह मिलाकर काँच के जार में भर कर ऊपर कपड़ा बांधकर 24 घंटे के लिए रख देना चाहिए। इसके बाद इसमें आवश्यकतानुसार सरसों का तेल गर्म करके ठण्डा करके डालकर रख देना चाहिए। इस प्रकार अचार 10–15 दिन तैयार हो जाता हैं।

फलों को सुखाना

गून्दे के फलों को सुखाकर परिरक्षित करना बहुत ही सरल है। सबसे पहले गून्दे के फलों को डण्ठल सहित पानी में उबाल लेना चाहिए। जब फल दबाने से मुलायम महसूस होवे तब पानी से बहार निकालकर पंखे के नीचे इस तरह सुखाएं कि फलों के चारों ओर कहीं भी पानी की बून्दे नजर नहीं आवें। जब फल ठण्डे हो जाए तब इसके डण्ठल अलग कारके एक–एक फल को अंगूठें व अंगुलियों के बीच दबा कर गुठली अलग कर लेना चाहिए। अब इन्हे धूप या बिजली चालित ड्रायर या सोलर ड्रायर में तब तक सुखाए जब तक फल हाथ से दबाने पर टूटने लगें तथा कुर–कुरे मालूम हो। इस अवस्था में इनकों पोलीथीन में पैक करके भण्डारण करना चाहिए।

गून्दे के फलों सें लाभ–लागत

गून्दें के फलों को उचित समय पर तुड़ाई करके उन्हे बाजार में बेचनें के लिए भेज देना चाहिए। फलों को साफ व श्रेणिकरण करके बेचने पर अधिक लाभ कमाया जा सकता है। इससे एक हैक्टर में लगभग 130300 रुपयें का शुद्ध लाभ कमाया जा सकता है। फलों से अचार व सुखा कर बचने पर अतिरिक्त लाभ कमाया जा सकता है।

सारणी 1 एक हैक्टर में गून्दे का बगीचा स्थापित करने की लागत व लाभ (रुपये) आंकलित प्रति हैक्टर 278 पौधों पर होने वाला खर्चा (रुपये)

क.स.	विवरण	प्रथम वर्ष	द्वितीय वर्ष	तृतीय वर्ष	कुल
अ	लागत व्यय				
1	भूमि की तैयारी	1800	–	–	1800
2	गड्डों की खुदाई व भराई (278 गड्डे, 35 रु./गड्डा)	9730	–	–	9730
3	रोपण सामग्री (278 पौधें, 20रु. /प्रति पौधा)	5560	–	–	5560
4	खाद व उर्वरक	2300	2500	2800	7600
5	पौध संरक्षण	3500	3500	4000	11000
6	सिंचाई	3000	4000	4000	11000
7	अन्तःकर्षण कियायें	15050	15500	16500	47050
8	अन्य व्यय (जैसे पत्तें की तुड़ाई)	1000	2000	2000	5000
9	कुल लागत	41940	27500	29300	98736
ब	**गून्दें की फसल से उपज एवं आय/हैक्टर**	**चौथें वर्ष**	**पांचवें वर्ष**	**छटवें वर्ष**	**सातवें वर्ष एवं आगे के वर्ष**
1	फल प्रति पौध (कि.ग्रा.)	15	25	35	40
2	फल कि.ग्रा. प्रति हैक्टर	4170	6950	9730	11120
3	कुल आय (औसतन 15 रु. प्रति कि.ग्रा.)	62550	104250	145950	166800
4	शुद्ध आय रुपये	20610	76750	116650	130300

गून्दे का पौधा

गून्दे के फल

गून्दे के फलों श्रेणीकरण

समाप्त

कविताएँ

Blooming Salt Affected Lands
केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान
CSSRI
1969
1969-2019

मीना लूथरा
भाकृअनुप–केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, करनाल–132001 (हरियाणा)
E-mail: meena.luthra@icar.gov.in

बड़ा ही महत्व है

दामन के साथ चोली का
समाज में मीठी बोली का
सामुदायिक काम में टोली का
राष्ट्रद्रोही के प्रति गोली का बड़ा ही महत्व है।
बाप को अपने बेटों का
किसान को अपने खेतों का
प्रेमिका को अपने चहेते का बड़ा ही महत्व है।
बाग में माली का
सावन में हरियाली का
रुधिर में लाली का
सीमा पर रखवाली का
घर में घरवाली का बड़ा ही महत्व है।
बनिया को अपने व्यापार का
योद्धा को अपने हथियार का
मंत्रिमंडल में सही सलाहकार का बड़ा ही महत्व है।
नेता के लिए नैतिकता का
अभिनेता को कला विशेषता का
विद्यार्थी के लिए एकाग्रता का
दुविधा में दृढ़ता का बड़ा ही महत्व है।
घर में महिला का
बाहर सहेली का
शादी में नई नवेली का बड़ा ही महत्व है।
कविता में लेखक का
परीक्षा में पर्यवेक्षक का
संस्थान में निदेशक का बड़ा ही महत्व है।
पूजा में देवालय का
सफाई में शौचालय का
पुस्तकों में पुस्तकालय का बड़ा ही महत्व है।
स्वतन्त्रता प्रेमी को आन और जिंदगानी का
बीमार पति को अपनी अर्धांगिनी का
भारतीय नारी को सुहाग प्रतीक बिंदी का
भारत सरकार को राष्ट्रभाषा हिन्दी का बड़ा ही महत्व है।

समाप्त

कृषि–विशेष : खेती–किसानी की कहावतें

विविध संकलन

भारत गांवों का देश है, यहाँ का लोकजीवन खेती पर आधारित है। अच्छी कृषि उपज ही उसका सौभाग्य है और फसल नष्ट होना मृत्यु समान है। इसलिए वह सदैव अच्छी फसल की कामना करता है। इस बारे में लोक अनुभव ही उसकी ज्ञान सम्पदा है। अनुभवी लोग इस बारे में जो कहते आए हैं, वह कहावत के रूप में मान्य है।

कहावतें ग्राम्य–कथन या ग्राम्य–साहित्य नहीं है। ये लोक जीवन का नीतिशास्त्र है। संसार के नीति साहित्य का विशिष्ट अध्याय है। विश्व में जिन सूत्रों को प्रेरक, अनुकरणीय तथा उद्हरणीय माना गया है, उनका सार तत्व प्रकारान्तर से इनमें मिल जायेगा। समान अनुभव से प्रसूत इन कहावतों के अधिकांश सूत्र सार्वभौमिक सत्य होते हैं। कुछ सूत्र स्थानीय या आंचलिक वैशिषता पर प्रकाश डालते हैं।

कहावतें जन मानस के लिए आलोक स्तम्भ हैं। इनके प्रकाश में हम जीवन के कठिन क्षणों में, लोकानुभव से मार्गदर्शन प्राप्त कर सफलता का मार्ग ढूंढते हैं। वह चिनगारी हैं – जिसमें अनन्त ऊष्मा है, जो जनमानस को मति, गति और शक्ति प्रदान करती हैं। हम किसी भी प्रसंग की चर्चा छेड़ दें, उससे जुड़ी कहावतें लोगों की जुबान पर आ जाती हैं। यही इनकी लोकव्याप्ति का प्रमाण है। इनका साम्राज्य विस्तृत है। इन्हें पढ़कर इनको गढ़ने वालों की सूझबूझ, सूक्ष्म पर्यवेक्षण क्षमता तथा वाक्य विद्धवता पर आश्चर्य होता है। वे सचमुच जीवन द्रष्टा थे।

कहावतें नदी के उन अनगढ़ शिलाखण्डों की तरह हैं जो युग–युगान्तर काल के प्रवाह में थपेड़े खा–खाकर शालिग्राम बन जाते तथा शिवत्व को प्राप्त करते हैं। इनमें लोक का बेडौलपन है, छन्दों की शास्त्रीयता नहीं है, तथापि इनमें काव्य का सा सहज प्रवाह है, वे सहज स्मरणीय हैं।

सर्वप्रथम कहावत शब्द पर विचार करना आवश्यक है। इसका संधि–विच्छेद है, कह़आवत – यानी कहते आते हैं। अर्थात परम्परा से कहते आये हैं। इससे मिलते–जुलते कुछ और भी शब्द हैं – सूक्ति, सुभाषित, लोकोक्ति और लोक सुभाषित। सूक्ति का अर्थ है, सुउक्ति अर्थात सुन्दर कथन। सुभाषित का अर्थ है सुभाषित अर्थात् सुन्दर रूप में कहा गया। यह भी सूक्ति का पर्यायवाची हुआ।

सूक्ति या सुभाषित प्रायः व्यक्ति या कृति विशेष का कथन होता है। जब यह कथन व्यक्ति की लेखकीय सीमाओं से ऊपर उठकर, पीढ़ी दर पीढ़ी अर्जित लोकानुभव तथा लोकज्ञान से परिमार्जित होता जाता है, काल की अग्नि में युग–युगों तक तपता है, तब कुन्दन बनकर इसका नाम हो जाता है– लोकोक्ति। इस प्रकार लोकोक्ति तथा कहावत समानार्थक हैं। लोक–सुभाषित भी इसी कोटि का शब्द है। लोक साहित्य के मनीषी डा. कृष्णदेव उपाध्याय ने कहावत, मुहावरा, पहेलियां, खुन्स तथा औटपाय नामक लोक विधाओं को लोक सुभाषित में ही परिगणित किया है।

इन कहावतों में सबकी पालनहार खेती को आजीविका का सर्वश्रेष्ठ साधन माना गया है। खेती–किसानी करने वाले को दत्तचित्त होकर खूब मेहनत करने की सलाह दी जाती है, आलस्य न होना उसका प्रमुख धर्म माना गया है। लोक ज्योतिष वर्षा को बहुत मान्यता देता है।

कहावतों में पशुओं के लक्षण तथा रखरखाव पर भी विचार किया गया है। इन सबका विचार कहावतों में व्यापक रूप से हुआ है। घाघ–भड्डरी जैसे ज्योतिषवेत्ताओं की भविष्यवाणी, लोक की थाती बन गई है। इन मामलों की चर्चा होते ही लोग घाघ–भड्डरी की बात करने लगते हैं। जिन कहावतों में घाघ–भड्डरी के नाम की छाप नहीं है, उन्हें भी उनका ही लिखा मानने लगते हैं। उनके बिना छाप की उक्तियां लोक–साहित्य के अन्तर्गत गिनी जाने लगी हैं। इन कहावतों में विविधता है तथा रोचकता भी। लोग उन्हें चटखारे लेकर पढ़ते सुनते तथा सुनाते हैं। आइये, लोक–ज्ञान के इस सागर में डुबकी लगाएं –

उत्तम खेती मध्यम बान।
अधम चाकरी भीख निदान।।

सर्वश्रेष्ठ व्यवसाय खेती (कृषि) है। मध्यम कोटि का व्यवसाय वाणिज्य (व्यापार) है। नौकरी अधम है। किन्तु भीख मांगना सबसे निकृष्ट कोटि का है।

भूमि न भुमियां छोडिये, बड़ौ भूमि कौ वास।
भूमि बिहीनी बेल जो, पल में होत बिनास।।

अपनी जमीन (आधार) नहीं छोड़नी चाहिये। भूमि पर वास का अपना बड़प्पन है। भूमि छोड़ देने वाली बेल का कुछ ही क्षणों में नाश हो जाता है।

खेती उत्तम काज है, इहि सम और न होय।
खाबे को सबको मिलै, खेती कीजे सोय।।

कृषि उत्तम कार्य है, इसके बराबर और कोई कार्य नहीं है। यह सबको भोजन देती है इसलिये खेती करनी चाहिये।

एक हर हत्या दो हर काज।
तीन हर खेती चार हर राज।।

एक हल की खेती करना अनार्थिक होता है, दो हल की खेती से काम चलाया जा सकता है, तीन हल की खेती से किसानी का सुख मिलता है और चार हल की खेती करने वाला राजसी वैभव से रह सकता है। इसी बात को (खेती की अधिकता के सुख को) एक अन्य लोकोक्ति में इस प्रकार कहा गया है।

दस हल राव, आठ हर राना।
चार हलों का, बड़ा किसाना।।
खेती धन कौ नास, धनी न होवै पास।
खेती धन की आस, धनी जो होवै पास।।

खेती से धन की आशा तभी करनी चाहिये जब कृषि कार्य करने वाला स्वामी (धनी) पास में रहे अर्थात् स्वयं करे। यदि धनी पास में नहीं रहता है तो खेती से प्राप्य धन तो नष्ट हो ही जाता है, साथ में लागत भी नष्ट हो जाती है। इसकी एक अंतर्कथा भी है।

खेती तौ थोरी करै, मेहनत करै सवाय।
राम चहै बा मनुस खों, टोटौ कभऊन आय।।

जो व्यक्ति भले ही खेती थोड़ी भूमि पर करे किन्तु मेहनत सवाई (अधिक परिश्रम) करे ऐसे मनुष्य को कभी टोटा (नुकसान) नहीं होता है।

इसके पूर्व इनके देखने भर का सुख है।
आलू बोबै अंधेरे पाख, खेत में डारे कूरा राख।
समय समय पै करे सिंचाई, तब आलू उपजे मन भाई।।
आलू कृष्ण पक्ष में बोना चाहिये, खेत में कूड़ा, राख की खाद डालकर सिंचाई करनी चाहिये
तब आलू भारी मात्रा में पैदा होता है।
गेंवड़े खेती, मेंड़ें महुआ।
ऐसौ है तो कौन रखउआ।।
गांव के निकट खेती और सीमा पर फलदार वृक्ष नहीं लगाने चाहिये।
ऐसा करने पर रखवाली कौन करेगा? अर्थात् कोई नहीं।
हरिन फलांगन काकरी, पेंग, पेंग कपास।
जाय कहौ किसान सें, बोबै घनी उखार।।

हिरण की छलांग की दूरी पर ककड़ी बोनी चाहिये, किन्तु कपास कदम–कदम की दूरी पर बोना चाहिये। ऊख को घना बोना चाहिये। ऐसा किसान से जाकर कहना।

तिरिया रोबै पुरुष बिना, खेती रोवै मेह बिना।।
स्त्री पुरूष के बिना तथा खेती वर्षा के बिना रोती है, अर्थात् बरबाद हो जाती है।
कातिक मास, रात हर जोतौ।
टांग पसारें, घर मत सूतौ।।
कार्तिक के मास में खेत तैयार करने के लिये रात्रि में भी हल जोतना चाहिये।
(उन दिनों) टांग पसारकर घर में नहीं सोना चाहिये। अर्थात् रात–दिन का परिश्रम अपेक्षित है।
सावन में ससरारी गये, पूस में खाये पुआ।
चौत में छैला पूंछत डोलें, तुम्हरें कित्ता हुआ।।
कृषक होते हुए भी कृषि कार्य के प्रति उदासीनता पर यह एक करारा व्यंग्य है।
कृषि कार्य के प्रमुख माह सावन में यदि कोई ससुराल जाय और पौष माह में मौज उड़ाता फिरे,
तब चैत्र के महीने में वह छैला दूसरों से पूछता फिरता है कि उनके खेतों में कितनी उपज हुई।
क्योंकि उसकी उदासीनता के कारण उसके अपने खेत में कुछ भी पैदा नहीं होता है।
अगहन बदी आठें घटा बिज्जु समेती जोय।
तो सावन बरसे भलौ, साख सवाई होय।।

असाढ़ सावन करी गमतरी, कातिक खाये, पुआ।
मांय बहिनियां पूछन लागे, कातिक कित्ता हुआ॥

आषाढ़ और सावन माह में जो गाँव–गाँव में घूमते रहे तथा कार्तिक में पुआ खाते रहे (मौज उड़ाते रहे) वह माँ, बहिनों से पूछते हैं कि कार्तिक की फसल में कितना (अनाज) पैदा हुआ। अर्थात् जो खेती में व्यक्तिगत रुचि नहीं लेते हैं उन्हें कुछ प्राप्त नहीं होता है।

उत्तम खेती आप सेती, मध्यम खेती भाई सेती।
निक्कट खेती नौकर सेती, बिगड़ गई तो बलाय सेती॥

उत्तम खेती वह है जो स्वयं की जाय मध्यम खेती वह है जो भाई देखे, निकृष्ट खेती वह है जिसे नौकर देखें। जो बला की तरह की जाय वह खेती बिल्कुल बिगड़ जाती है।

नित्तई खेती दूजै गाय, जो ना देखै ऊ की जाय।
खेती करै रात घर सोवै, काटै चोर मूंड़ धर रोवै॥

नित्य ही खेती और गाय को जो स्वयं नहीं देखते हैं उसकी (खेती या गाय) चली जाती है। जो खेती करके रात्रि में घर पर सोते हैं– उनकी खेती चोर काट ले जाते हैं, और वह सिर पीटकर रोते हैं अर्थात् कृषि कार्य और गौ सेवा स्वयं करनी चाहिये, दूसरों के भरोसे नहीं। इसी को एक अन्य लोकोक्ति में कहा गया है–

खुद करै तौ खेती।, नईं तौ बंजर हेती॥
खेती उनकी कहें, जो हल अपने हांत गहें।
आदी खेती उनकी कहें, जो नित हल के संग रहें।
बयें बीज उपजै नईं तहां, जो पूंछें कै हर है कहां॥

जो स्वयं हल चलाकर खेती करते हैं उन्हें खेती का पूरा लाभ मिलता है। जो हल के साथ रहते हैं किन्तु हल दूसरों से चलवाते हैं उन्हें खेती का आधा लाभ मिलता है। किन्तु जिन्हें हल की स्थिति के बारे में ज्ञान नहीं होता है, उनके यहां खेती निष्फल होती है।

कच्चौ खेत न जोतै कोई।
नईं तो बीज न अंकुरा होई॥

कच्चा खेत किसी को नहीं जोतना चाहिये अन्यथा बीज अंकुरित नहीं होता है। कच्चे खेत से तात्पर्य फसल बोने के पूर्व की गयी तैयारी जैसे जोतना, गोड़ना, खाद मिलाने आदि मृदा–संस्कार से है।

जरयाने उर कांस में, खेत करौ जिन कोय।
बैला दोऊ बैंच कें, करो नौकरी सोय॥

कंटीली झाड़ियों और कांस से युक्त खेत में खेती नहीं करनी चाहिये अन्यथा उससे क्षति होगी। इससे बेहतर है कि दोनों बैल बेचकर नौकरी करें और निश्चिन्त होकर सोवें।

ठांड़ी खेती, गाभिन गाय।
तब जानौं, जब मौं में जाय।

खेत में खड़ी फसल और गाभिन गाय का सुख तभी जानिये जब उनका परिणाम सामने आ जाय। खेत का अन्न और गाय का दूध मुंह में जाने पर ही सुख मानना चाहिये। इसके पूर्व इनके देखने भर का सुख है।

आलू बोबै अंधेरे पाख, खेत में डारे कूरा राख।
समय समय पै करे सिंचाई, तब आलू उपजे मन भाई॥

आलू कृष्ण पक्ष में बोना चाहिये, खेत में कूड़ा, राख की खाद डालकर सिंचाई करनी चाहिये तब आलू भारी मात्रा में पैदा होता है।

गेंवड़े खेती, मेंड़ें महुआ।
ऐसौ है तो कौन रखउआ॥

गांव के निकट खेती और सीमा पर फलदार वृक्ष नहीं लगाने चाहिये। ऐसा करने पर रखवाली कौन करेगा? अर्थात् कोई नहीं।

हरिन फलांगन काकरी, पेंग, पेंग कपास।
जाय कहौ किसान सें, बोबै घनी उखार॥

हिरण की छलांग की दूरी पर ककड़ी बोनी चाहिये, किन्तु कपास कदम–कदम की दूरी पर बोना चाहिये। ऊख को घना बोना चाहिये। ऐसा किसान से जाकर कहना।

तिरिया रोबै पुरुष बिना, खेती रोवै मेह बिना॥

स्त्री पुरूष के बिना तथा खेती वर्षा के बिना रोती है, अर्थात् बरबाद हो जाती है।

कातिक मास, रात हर जोतौ।
टांग पसारें, घर मत सूतौ॥

कार्तिक के मास में खेत तैयार करने के लिये रात्रि में भी हल जोतना चाहिये। (उन दिनों) टांग पसारकर घर में नहीं सोना चाहिये। अर्थात् रात–दिन का परिश्रम अपेक्षित है।

सावन में ससरारी गये, पूस में खाये पुआ।
चौत में छैला पूंछत डोलें, तुम्हरें कित्ता हुआ॥

कृषक होते हुए भी कृषि कार्य के प्रति उदासीनता पर यह एक करारा व्यंग्य है। कृषि कार्य के प्रमुख माह सावन में यदि कोई ससुराल जाय और पौष माह में मौज उड़ाता फिरे, तब चैत्र के महीने में वह छैला दूसरों से पूछता फिरता है कि उनके खेतों में कितनी उपज हुई। क्योंकि उसकी उदासीनता के कारण उसके अपने खेत में कुछ भी पैदा नहीं होता है।

अगहन बदी आठें घटा बिज्जु समेती जोय।
तो सावन बरसे भलौ, साख सवाई होय॥

अगहन बदी (कृष्ण पक्ष की) अष्टमी को काले बादलों की घटा हो और बिजली चमके तो सावन में पानी अच्छा बरसेगा और खेती सवाई हो जायेगी।

चौत चमक्कै बीजली, बरसै सुदि बैसाख।
जेठै सूरज जो तपैं, निश्चौ वरसा भाख॥

चैत्र में बिजली चमके, बैशाख के शुक्ल पक्ष में पानी बरसे तथा ज्येष्ठ में सूरज की गर्मी अधिक हो तो निश्चय ही अच्छी बरसात होगी।

चौत बदी, परमा दिवस, जो आवे रविवार।
वायु कोप होवै घनो, सह न सकै भू भार॥

चैत्र कृष्ण प्रतिपदा को रविवार हो तो वायु का भारी कोप होगा अन्धड़ आयेगा और जन जीवन अस्त व्यस्त हो जायेगा।

चौदस पूनों जेठ की बर्षा बरसें जोय।
चौमासौ बरसै नहीं नदियन नीर न होय॥

ज्येष्ठ मास की शुक्ल पक्ष की चतुर्दशी तथा पूर्णिमा को यदि पानी बरसे तो बरसात में पानी नहीं बरसेगा तथा नदियों में पानी नहीं होगा।

पंचमि कातिक शुक्ल की जो होवे शनिवार।
तो दुकाल भारी पड़े मचि है हा—हा कार॥

कार्तिक शुक्ल पंचमी को यदि शनिवार पड़े तो अकाल पड़ेगा और हा—हाकार मचेगा।

पुरुवा में जो पछुआ बहै,
हंस के नार पुरुष से कहै।
वो बरसै जो करै भरता,
सबै कहै यह अमिट विचार॥

पुरवाई बहते—बहते अचानक पछुआ बहने लगे, स्त्री हंसकर पर—पुरुष से बात करे तब यह सर्वमान्य विचार है कि वह (बादल) बरसेंगें तथा वह (स्त्री) पति वर लेगी।

माघ मास में हिम परै बिजली चमके जोय।
जगत सुखी निश्चय रहै वृष्टि घनेरी होय॥

माघ मास में बिजली चमके और ओले पड़ें तो घनी बर्षा होगी तथा समस्त संसार सुखी रहेगा।

मेघ करोंटा लै गओ, इन्द्र बांध गओ टेक।
बेर मकोरा यों कहें, मरन न दैहों एक॥

बेर तथा मकोरा कहते हैं कि भले ही बादल करवट ले लें तथा इंद्र टेक बांध लें (न बरसने की जिद करें) किन्तु हम किसी को मरने नहीं देंगे। अर्थात जलसिंचन के अभाव में भी बुन्देलखण्ड की धरती बेर तथा मकोरा पैदा करने में सक्षम है। जिससे मनुष्य के जीवन का गुजारा हो सकता है।

सावन में पुरवैया, भादों में पछयाव।
हरंवारे हर छांड़कें लरका जाय जिबाव॥

सावन में पूर्व की ओर से (पुरवाई) हवा चले तथा भादों में पश्चिम की ओर से (पछुआ) हवा चले तो अकाल पड़ने की सम्भावना होती है तब किसानों हल छोड़कर बच्चे जीवित रखने का अन्य साधन तलाशना चाहिए।

सांझें धनुष सकारें मोरा। जे दोनों पानी के।

शाम को इन्द्रधनुष का दिखाई देना और प्रातः काल मोर का नाचना— दोनों पानी बरसने के संकेत हैं।

सावन सुकला सप्तमी, जो गरजै अधिरात।
तुम जैयो पिय मालवा, हम जैहैं गुजरात॥

सावन शुक्ला सप्तमी को यदि आधी रात्रि में बादल गरजे तो अकाल पड़ेगा। ऐसी स्थिति में घर में दाना नहीं बचेगा। तब हे! प्रियतम तुम मालवा चले जाना मैं गुजरात चली जाऊंगी।

सोम, सुक्र, गुरुवार कों फूस अमावस होय।
घर—घर बजें बधाइयां, दुखी न दीखै कोय॥

यदि पौष माह की अमावस्या, सोमवार गुरुवार या शुक्रवार को हो, तो सुकाल आयेगा, कोई दीन दुखी नहीं होगा और घर—घर बधाइयां बजेंगी।

इन कहावतों में लोकमान्यताओं, लोकविश्वास के साथ अनेक ऐसे तत्व मिलते हैं जिनसे लोकजीवन तथा संस्कृति की झलक मिलती है।

समाप्त

राजभाषा कार्यक्रम

हिन्दी पखवाड़ा
हिन्दी पखवाड़ा

हिन्दी पखवाड़ा
हिन्दी पखवाड़ा

हिन्दी पखवाड़ा
हिन्दी पखवाड़ा

हिन्दी पखवाड़ा
हिन्दी पखवाड़ा

हिन्दी पखवाड़ा
हिन्दी पखवाड़ा

रामेश्वर लाल मीणा,* अनिल कुमार एवं सुनील कुमार त्यागी
भाकृअनुप–केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, करनाल–132001 (हरियाणा)
*E-mail: ashwani.kumar1@icar.gov.in

संस्थान के कृषि अनुसंधान एवं अन्य क्रियाकलापों में राजभाषा हिन्दी

हिन्दी पखवाडे का आयोजन

विगत वर्षों की भांति इस वर्ष भी केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान करनाल में 14 से 28 सितम्बर 2017 के दौरान हिन्दी पखवाड़े का आयोजन किया गया। दिनांक 14 सितम्बर 2017 को हिन्दी पखवाड़े का शुभारम्भ मुख्य अतिथि डा॰ आर॰आर॰बी॰ सिंह, निदेशक, राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान, करनाल ने दीप प्रज्जवलित करके किया। हिन्दी पखवाड़ा समिति के अध्यक्ष डा॰ अनिल कुमार ने हिन्दी के महत्व को बताते हुए राजभाषा के नियमों व अधिनियमों की विस्तृत जानकारी दी तथा हिन्दी पखवाड़ा के दौरान आयोजित किए जाने वाले कार्यक्रमों व प्रतियोगिताओं के बारे में अवगत कराया। उन्होंने कृषि मंत्री भारत सरकार का हिन्दी चेतना मास, संदेश पढ़कर सुनाया एवं संस्थान के सभी सदस्यों से अपने दैनिक कार्यों में हिन्दी के प्रयोग को बढ़ावा देने की अपील की व पखवाड़े के दौरान आयोजित की जाने वाली सभी प्रतियोगिताओं में बढ़–चढ़कर भाग लेने की अपील की।

हिन्दी पखवाड़ा
हिन्दी पखवाड़ा

हिन्दी पखवाडा उद्घाटन के अवसर पर सभा को संबोधित करते मुख्य अतिथि डा॰ आर॰आर॰बी॰ सिंह, निदेशक एवं कुलपति, एनडीआरआई, करनाल

हिन्दी पखवाड़ा उद्घाटन समारोह के मुख्य अतिथि ने इस संस्थान में हिन्दी में हो रहे कार्यों की सराहना की और तथा कहा कि हिन्दी पखवाडे के दौरान हिन्दी भाषा का अधिक से अधिक संचार होता है। उन्होंने कहा कि भारत एक महान देश है जोकि विविधिताओं से भरा हुआ है और भाषा सारी विविधिताओं को जोड़ने के लिए एक कडी का काम करती है। राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी ने देश के स्वतंत्रता आन्दोलन के दौरान अपना सारा संवाद हिन्दी भाषा में किया तथा उन्हें तभी यह अहसास हो गया कि हिन्दी के माध्यम से ही देश को एकता के सूत्र में पिरोया जा सकता है इसलिये उन्होंने हिन्दी को राष्ट्र भाषा का दर्जा दिलवाने का भरसक प्रयास किया। हिन्दी भाषा एक सरल, सशक्त एवं वैज्ञानिक भाषा है इसको सुदृढ़ करने के लिए हमें अधिक से अधिक हिन्दी में काम करना होगा।

हिन्दी राष्ट्रीय एकता व राष्ट्रीय स्वाभिमान की भाषा है इसके प्रयोग से हमें गौरवान्वित महसूस करना चाहिये। उन्होंने सभी अधिकारियों व कर्मचारियों को अधिक से अधिक कार्य हिन्दी में करने का आह्वान किया। इस अवसर पर संस्थान के निदेशक डा॰ प्रबोध चन्द्र शर्मा ने अपने अभिभाषण में कहा कि यह दिवस हमें अपने संवैधानिक उत्तरदायित्व के प्रति सचेत करता है। उन्होंने कहा कि राजभाषा के प्रति प्रेम और समर्पण से ही स्वदेश के प्रति प्रेम की भावना जागृत होती है जिसके लिये केन्द्र सरकार का राजभाषा विभाग व सभी राजकीय संस्थाएं हर संभव कोशिश कर रहे हैं ताकि कार्यालयों में हिन्दी का अधिकाधिक

उपयोग हो। उन्होंने कहा कि हिन्दी दुनिया में सबसे ज्यादा बोली जाने वाली तीसरी भाषा है। अब डिजिटल क्रांति का युग शुरू हो चुका है गूगल, याहु और यू–ट्यूब जैसी वैबसाइटों से हिन्दी को निश्चित रूप से बढ़ावा मिल रहा है। उन्होंने आह्वान किया कि सभी अधिकारी/कर्मचारी सरकारी कामकाज हिन्दी में ही करें। हिन्दी पखवाड़े का समापन व पुरस्कार वितरण समारोह दिनांक 28 सितम्बर 2017 को आयोजित किया गया। समापन समारोह की मुख्य अतिथि माननीया डा॰ प्रियंका सोनी (भाप्रसे), नगर निगम आयुक्त, करनाल रही। मुख्य अतिथि डा॰ प्रियंका सोनी ने कहा कि बच्चों व नौजवानों के बीच धीरे–धीरे हिन्दी उपेक्षा का शिकार होती जा रही है। माँ भी अपने बच्चे को अंग्रेजी के शब्द सिखाकर खुश होती है। हिन्दी को अनपढ़ लोगों की भाषा समझा जाने लगा है। मासी, चाची, ताई सभी को आंटी बोला जाने लगा है और हम हिन्दी भाषा को कमजोर कर रहे हैं। उन्होंने कहा कि अंग्रेजी का अपना महत्व है और

हिन्दी पखवाड़े के अंतर्गत आयोजित प्रतियोगिताओं व उनके विजेताओं का विवरण

क्र॰ सं॰	दिनांक	प्रतियोगिता का नाम	विजेताओं के नाम			
			प्रथम	द्वितीय	तृतीय	प्रोत्साहन
1.	14 सितम्बर	आशु भाषण	प्रवीण कुमार	देवेन्द्र सिंह बुन्देला	अनिता मान	देवेन्द्र यादव
2.	18 सितम्बर	निबंध लेखन	सुनीता मल्होत्रा	फतेह सिंह	पारूल सुंधा	–
3.	20 सितम्बर	आवेदन पत्र लेखन (चतुर्थ श्रेणी कर्मचारियों हेतु)	फतेह सिंह	चरण सिंह मीणा	निरंजन सिंह	–
4.	23 सितम्बर	हिन्दी टंकण	सुषमा गर्ग	दिनेश गुगनानी	रीटा आहुजा	–
5.	25 सितम्बर	टिप्पणी एवं मसौदा लेखन नगर स्तरीय	ईश्वर दियाल	नरेन्द्र कुमार वैद व चित्रनायक	कुनाल कालडा	मुकेश कुमार तोमर, सुषमा गर्ग, राकेश कुमार, अनिल कुमार शर्मा, अनिता मेहता, यशवन्त सिंह, करम सिंह एवं राजेश कुमार
6.	26 सितम्बर	प्रश्नोत्तरी	प्रवीण कुमार, मयंक पांडे, दलीप सिंह	असीम दत्ता, अनिता मेहता, राजपाल	मधु चौधरी, अनिल शर्मा, शिवांगी	राजकुमार, बृजमोहन मीणा, अजय जोशी
7.	27 सितम्बर	हिन्दी गीत अन्ताक्षरी	अश्वनी कुमार, दिलबाग सिंह, मयंक पांडे	महति प्रकाश, नरेन्द्र कुमार वैद, सुषमा गर्ग	तरूण कुमार, दिनेश गुगनानी, रीटा आहुजा	सुनीता ढीगंडा, देवेन्द्र यादव, बृजमोहन मीणा
8.	28 सितम्बर	पोस्टर प्रदर्शनी	असलम पठान, एवं सहयोगी	मधु चौधरी, एवं सहयोगी	–	–
9.	28 सितम्बर	कविता पाठ	मयंक पाडे	बृजमोहन मीणा	जसबीर कौर	नरेन्द्र कुमार वैद

प्रोत्साहनपुरस्कार योजना के अन्तर्गत पुरस्कृत कर्मचारियों की सूची

क्र.सं.	कर्मचारी का नाम	पुरस्कार
1	श्री बलवान सिंह	प्रथम
2	श्रीमती जसबीर कौर	द्वितीय
3	श्री जसबीर सिंह	द्वितीय
4	श्रीमती सुषमा गर्ग	तृतीय
5	श्री सुरेश पाल राणा	तृतीय
5	श्री चरण सिंह मीणा	तृतीय

यह विश्व भर में बोली जाने वाली भाषा है लेकिन इससे हिन्दी का महत्व कम नहीं आंकना चाहिये। हमें दैनिक संवाद व सरकारी काम काज में हिन्दी का अधिक से अधिक प्रयोग करना चाहिये। हमें जो विचार आता है वह हमारी मातृभाषा हिन्दी से ही आता है, बाद में उसे हम अंग्रेजी में लिखते हैं। हमें हिन्दी की प्रतियोगिताओं के माध्यम से हिन्दी का प्रचार–प्रसार बढ़ाना चाहिये और उन्होंने संस्थान में हिन्दी के कार्यों की प्रगति को देखकर प्रसन्नता व संतोष व्यक्त किया और कर्मचारियों से आह्वान किया कि वे अपना अधिक से अधिक कार्य हिन्दी में करें। इस अवसर पर संस्थान के निदेशक ने पखवाड़े के दौरान आयोजित की गई प्रतियोगिताओं एवं उनमें भाग लेने वाले सभी प्रतिभागियों की सराहना की तथा विजेताओं को हार्दिक बधाई दी। उन्होंने वैज्ञानिकों से अपील की कि वे अपने शोध–पत्रों को हिन्दी में प्रकाशित करने का प्रयास करें तथा सभी अधिकारी व कर्मचारीगण से अपील करते हुए कहा कि वे अपना अधिकाधिक सरकारी कामकाज हिन्दी में ही करने का प्रयास करें। समापन समारोह के अवसर कविता पाठ प्रतियोगिता भी आयोजित की गई। इस अवसर पर प्रोत्साहन पुरस्कार योजना के अंतर्गत वर्ष भर हिन्दी में अधिक व उत्कृष्ट कार्य करने वाले अधिकारियों एवं कर्मचारियों व हिन्दी पखवाड़े के दौरान हुई प्रतियोगिताओं के विजेताओं को भी पुरस्कृत किया गया।।

हिन्दी में तकनीकी पोस्टर प्रदर्शनी का आयोजन

केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान में 28 सितम्बर 2017 को तकनीकी पोस्टर प्रदर्शनी प्रतियोगिता आयोजित की गई इसी दिन हिन्दी पखवाड़े के समापन के अवसर पर इन पोस्टरों का मूल्यांकन भी किया गया। डा॰ प्रियंका सोनी ने संस्थान के शोध कार्यों को पोस्टर के रूप में प्रदर्शन की सराहना की।

पोस्टर प्रदर्शनी प्रतियोगिता के निर्णायक मण्डल के मूल्यांकन के आधार परभूमिगत जल निकास टेक्नोलोजी द्वारा जलग्रस्त लवणीय मृदाओं का सुधार–असलम पठान, राहुल टोलिया, भास्कर नर्जरी, सत्येन्द्र कुमार एवं देवेन्द्र सिंह बुंदेला के पोस्टर को प्रथम, तथा पादप वृद्धि को बढ़ाने वाले जीवाणुओं का फसल में लवणता तनाव कम करने हेतु पृथक्करण, पहचान व मूल्यांकन करना–मधु चौधरी, अवतार सिंह एवं गजेन्द्र के पोस्टर को द्वितीय पुरस्कार प्राप्त हुआ। संस्थान के निदेशक द्वारा पोस्टर प्रदर्शनी को तकनीकी हस्तांतरण का एक महत्वपूर्ण माध्यम बताते हुये प्रतियोगिता में भाग लेने वाले वैज्ञानिकों की सराहना की।

हिन्दी पखवाड़ा
हिन्दी पखवाड़ा

हिन्दी पखवाड़ा समापन समारोह में सभा को संबोधित करती मुख्य अतिथि डा॰ प्रियंका सोनी (भाप्रसे), नगर निगम आयुक्त, करनाल

संस्थान राजभाषा कार्यान्वयन समिति की त्रैमासिक बैठकें

- दिनाँक 22 जून 2017 को केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान राजभाषा कार्यान्वयनसमिति की चतुर्थ बैठक आयोजित की गई जिसमें पिछली बैठक की कार्यवाही की पुष्टि एवं अनुवर्ती कार्रवाई की समीक्षा, परिषद से प्राप्त पत्रों पर विचार, कार्यशालाओं का आयोजन, वैबसाइट द्विभाषी बनाए जाने, पैनल व बोर्ड द्विभाषी बनाने के संबंध में चर्चा की गई।

- दिनाँक 01 सितम्बर 2017 को केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान राजभाषा कार्यान्वयन समिति की प्रथम बैठक आयोजित की गई जिसमें परिषद से प्राप्त पत्रों एवं तिमाही रिपोर्ट की समीक्षा, पिछली तिमाही में हुए राजभाषा कार्यों की समीक्षा व राजभाषा सम्बन्धि वर्ष 2017–18 के वार्षिक कार्यक्रम के बारे में चर्चा की गई और सितम्बर में होने वाले हिन्दी पखवाड़े की योजना बनाई गई।

- दिनाँक 21 दिसम्बर 2017 को केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान राजभाषा कार्यान्वयन समिति की द्वितीय बैठक आयोजित की गई जिसमें पिछली बैठक की कार्यवाही की पुष्टि तथा अनुवर्ती कार्रवाई की समीक्षा, परिषद से प्राप्त राजभाषा कार्यान्वयन समिति की बैठक के कार्यवृत्त की समीक्षा व हिन्दी पखवाड़े की रिपोर्ट पर चर्चा की गई।

- दिनाँक 27 मार्च, 2018 केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान राजभाषा कार्यान्वयन समिति की तृतीय बैठक आयोजित की गई जिसमें पिछली बैठक की कार्यवाही की पुष्टि तथा अनुवर्ती कार्रवाई की समीक्षा, परिषद से प्राप्त राजभाषा कार्यान्वयन समिति की बैठक के कार्यवृत्त की समीक्षा पर चर्चा की गई।

- कार्यालय में डाक प्रेषण का सारा काम हिन्दी में किया गया।
- अधिकारियों/कर्मचारियों की सेवा पुस्तिकाओं में प्रविष्टियाँ हिन्दी में की गई।
- संस्थान में सभी नामपट् बोर्ड, बैनर आदि द्विभाषी बनाए गये।
- संस्थान में सभी प्रशासनिक बैठकें हिन्दी में आयोजित की गई।
- सभी मजदूरों के ठेके तथा नीलामी की सूचनाएं, विज्ञापन, प्रेस नोट निमंत्रण कार्ड आदि हिन्दी में प्रकाशित किये गये।
- लेखा परीक्षा अनुभाग के सभी बिलों पर भुगतान आदेश हिन्दी में लगाये गये व रोकड बही भी हिन्दी में लिखी गई।

पुरस्कार

नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति की 59वीं छमाही बैठक का आयोजन दिनांक 09 जून 2017 को भाकृअनुप–राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान, करनाल में हुआ, इसमें संस्थान को राजभाषा हिन्दी संबंधी उल्लेखनीय कार्य करने हेतु प्रथम पुरस्कार प्रदान किया गया।

संस्थान में पांच दिवसीय विशेष तकनीकी अनुवाद प्रशिक्षण कार्यक्रम का आयोजन

केन्द्रीय अनुवाद ब्यूरो, राजभाषा विभाग, नई दिल्ली के सौजन्य से संस्थान में दिनांक 4 से 8 दिसम्बर 2017 के दौरान एक पांच दिवसीय विशेष तकनीकी अनुवाद प्रशिक्षण कार्यक्रम का सफलतापूर्वक आयोजन किया गया। इस प्रशिक्षण में संस्थान के 25 वैज्ञानिकों/तकनीकी अधिकारियों व कर्मचारियों ने भाग लिया। प्रशिक्षण के दौरान ब्यूरो के अधिकारियों ने ब्यूरो द्वारा संचालित प्रशिक्षण संबंधी कार्यकलापों की जानकारी दी व अनुवाद की आवश्यकता एवं महत्व पर चर्चा की व अन्य वक्ताओं द्वारा सरकारी कामकाज में अनुवाद की समस्याएं व समाधान, कृषि से संबंधित शब्दावली एवं तत्संबंधी नवीनतम संकल्पनाओं पर चर्चा, संस्थान के मृदा लवणता संबंधी अनुसंधान कार्यों का हिन्दी भाषा में लेखन एवं प्रस्तुतीकरण में आने वाली कठिनाइयों पर चर्चा एवं उनका समाधान, कृषि वैज्ञानिकों और किसानों के मध्य संवाद कायम करने में हिन्दी की भूमिका, वैज्ञानिकों और तकनीकी अनुवाद की व्यवहारिक समस्याएं एवं उनका समाधान,

विशेष तकनीकी अनुवाद प्रशिक्षण कार्यक्रम का शुभारम्भ

विज्ञान, वैज्ञानिक और हिन्दी, संस्थान में आयोजित की जाने वाली संगोष्ठियों व कार्यशालाओं आदि के आयोजन में हिन्दी के प्रयोग की संभावनाएं तथा अनुवाद संबंधी विषयों पर व्याख्यान दिये गये।

केन्द्रीय अनुवाद ब्यूरो द्वारा देश के किसी सरकारी संस्थान में आयोजित किया गया इस प्रकार का यह दूसरा प्रशिक्षण कार्यक्रम था। इससे पहले यह प्रशिक्षण केवल भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द्र, मुम्बई में आयोजित किया गया था। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के किसी संस्थान में इसे पहली बार केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान में आयोजित किया गया। इस प्रशिक्षण का शुभारम्भ संस्थान के निदेशक द्वारा किया गया व समापन के अवसर पर परिषद् के राजभाषा विभाग की निदेशक श्रीमती सीमा चोपड़ा ने मुख्य अतिथि के रूप में उपस्थित रहकर कार्यक्रम की शोभा बढ़ाई व प्रशिक्षणार्थियों को प्रमाण पत्र प्रदान किये।

महिला किसान मेला
गाँव : सिकन्दर खेड़ी (कैथल)
15 अक्तूबर 2017

मेरा गाँव मेरा गौरव के अन्तर्गत
प्री-खरीफ किसान गोष्ठी
गाँव : मांडी खुर्द (जींद)
12 मई, 2017
भा.कृ.अनु.प.

फार्मर फर्स्ट परियोजना
प्रशिक्षण कार्यक्रम

फार्मर फर्स्ट परियोजना

विश्व मृदा दिवस एवं कृषि शिक्षा दिवस

संतुलित उर्वरक प्रबंध
15-17 फरवरी 2018

150 YEARS OF CELEBRATING THE MAHATMA

स्वच्छ भारत
एक कदम स्वच्छता की ओर

भाकृअनुप
ICAR

हर कदम, हर डगर
किसानों का हमसफर
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद

Agrisearch with a human touch

बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ